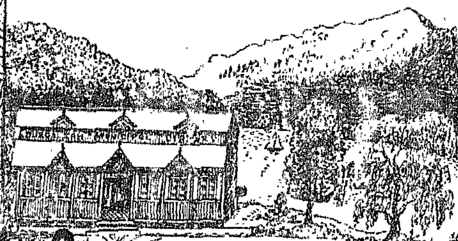




यह उपन्यास भारत को कलंक-कालिमा लगाने वाली सब से भीषण ऐतिहासिक घटना को लेकर लिखा गया है। बारह सौ वर्ष पूर्व के सुख—समृद्धि—आप्लावित भारत पर बगदादी मुस्लिम सेनापति मुहम्मद—बिन—कासिम का प्रथम आक्रमण—आर्य जाति की दुर्बलताओं का दुष्परिणाम—रस-रंग और अर्थ लोभ और अनेक कारण पुण्य भूमि का पराभव—मणि माणिक्य और मार्तण्ड मंदिर की लूट, विधर्मी और विदेशी प्रभाव—महाराज कुमारियों का विदेश प्रेषण, मंत्रिवर और महामाया के चातुर्य से उन की संरक्षा, विदेश जाते भारतीय धन का उद्धार और अन्ततः उनके जीवन के मूल्य पर मुहम्मद—बिन—कासिम के प्रत्यावर्तन विनाश तथा मंत्रिवर की संगठन शक्ति द्वारा कान्य-कुब्जी युद्ध में इस्लामी शक्तियों की पराजय, और आर्य शक्तियों की विजय ऐतिहासिक तथ्यों पर आधार भूत इस उपन्यास में विख्यात ऐतिहासिक—गाथा—लेखक ने कल्पना, कोमल और कठोर शृंखलाओं को जोड़कर इसे ऐसा रोचक, और मर्मस्पर्शी बना दिया है कि एक बार आरम्भ कर इसे समाप्त किये बिना पाठक नहीं रहेगा।

पहले 'रक्त-धारा' के नाम से विज्ञप्त हुआ था।

जब आकाश भी रो पड़ा

जब आकाश भी रो पड़ा

लेखक
राजबहादुर सिंह

प्रकाशक
साहित्य सदन
देहरादून
(उत्तर प्रदेश)

प्रकाशक :

साहित्य सदन
देहरादून

प्रथम संस्करण : २०००
मूल्य : ढाई रुपये

मुद्रक :
श्यामकुमार गर्ग
हिन्दी प्रिंटिंग प्रेस
शिवाश्रम, क्वीन्स रोड, दिल्ली

प्रस्तावना

ठाकुर राजबहादुरसिंह जी हिन्दी के सिद्धहस्त लेखक हैं, उनके हाथ में आकर, कोई भी प्रतिपाद्य वस्तु हो, उज्ज्वल रूप धारण कर लेती है, फिर इस उपन्यास का तो विषय स्वयं इतना रोचक और महत्वपूर्ण है कि सोने और सुगन्ध का मेल हो गया है। ठाकुर जी ने सिन्ध पर मुहम्मद बिन कासिम के आक्रमण की ऐतिहासिक घटना का आशय लेकर इस कथानक की रचना की है। मुझे इसमें विशेष प्रशंसा के योग्य यह बात लगी कि कथा भाग और इतिहास को समान गति से चलाया गया है, यह नहीं किया गया कि कथावस्तु इतिहास को पीछे छोड़कर कोसों आगे निकल गई हो। मुझे आशा है, हिन्दी जगत् में यह उपन्यास आदर प्राप्त करेगा।

२६-६-५०　　　　　　　　　　　　　　　　　　　　इन्द्र

दो शब्द

एक दशाब्दी से अधिक साहित्य-सेवा से संन्यास लेने के पश्चात् मैं अपनी वर्द्धित अवस्था तथा परिपक्व बुद्धि लेकर एक बार फिर साहित्य-क्षेत्र में अवतीर्ण हो रहा हूँ। गत महायुद्ध के पूर्व मैंने फ्रेञ्ज, रूसी और ब्रिटिश औपन्यासिकों की चुनी हुई कृत्रियों के हिन्दी अनुवाद पूर्ण मनोयोग और अथक परिश्रम के पश्चात् उपस्थित किये थे और संसार के प्रमुखतम साहित्यिकों की सर्वस्वीकृत एवं नोबल-पुरस्कृत रचनाओं की एक व्याख्यात्मक पुस्तक नवयुग साहित्य मन्दिर, दिल्ली से प्रकाशित करायी थी जिसकी भूमिका श्री सुकुमार चटर्जी ने लिखने की कृपा की थी और जिसकी प्रशंसा 'नागरी प्रचारिणी पत्रिका' तक ने की थी। उन दिनों मेरे जो मौलिक उपन्यास—कर्तव्यपथ, सोफिया, पितृभूमि आदि निकले थे उनका हिन्दी-साहित्य-जगत् में अच्छा स्वागत हुआ था; किन्तु मैंने सदा राजनीति से कुछ-न-कुछ सम्पर्क रखा है इसलिए जब भरतपुर-राज्य में पहले-पहले निर्वाचन-द्वारा कौंसिल बनाने और तत्कालीन महाराज श्रीकृष्णसिंह-द्वारा राजा महेन्द्र प्रताप

को आर्थिक सहायता भिजवाने तथा हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के भरतपुर-अधिवेशन पर कविवर रवीन्द्रनाथ ठाकुर को आमंत्रित करके हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के उस पहले और अन्तिम अधिवेशन में कविवर से हिन्दी में भाषण कराने एवं अन्य कवियों और साहित्यिकों का महाराज-द्वारा समादर कराने आदि कार्यकलापों में संलग्न रहने का अपराध (?) तत्कालीन स्टेट्स के उच्चतम बृटिश अधिकारियों से सह्य न हुआ, तो मुझे अपनी समस्त ऐहिक सम्पत्ति वहीं छोड़कर भी राज्यसीमा छोड़ देनी पड़ी।

इसके पश्चात् मैंने दिल्ली से 'लेनिन और गाँधी' तथा 'रूस का पञ्चवर्षीय आयोजन' प्रकाशित कराये। पर ये दोनों ही पुस्तकें तत्कालीन बृटिश सरकार-द्वारा जब्त करली गयीं और मुझे न केवल आर्थिक दृष्टि से घोर रूप में क्षतिग्रस्त होना पड़ा प्रत्युत् क्रान्तिकारी श्री यशपाल का साथी होने के सन्देह में गुप्तचर विभाग द्वारा प्रपीड़ित भी होना पड़ा। फलस्वरूप १६३४ ई० में मैं बम्बई-प्रवास कर गया जहाँ मुझे अपेक्षाकृत अधिक शांति मिली, और कुछ साहित्यिक और राजनीतिक कार्य करने का सुअवसर भी। १६३६ में मैंने 'प्रवासी की कहानी' लिखी जिसकी भूमिका कांग्रेस के तत्कालीन सभापति (वर्त्तमान राष्ट्रपति) डा० राजेन्द्र प्रसाद ने लिखने की कृपा की थी। यद्यपि उसके बाद भी मैंने कुछ ऐतिहासिक कहानियाँ और मराठी तथा गुजराती से स्वर्गीय हरिनारायण आपटे तथा

श्री कन्हैयालाल माणिकलाल मुन्शी की कृतियों का अनुवाद करके अपनी लेखन-शक्ति को कुण्ठित होने से बचाये रखा; किन्तु उसके पश्चात् मुझसे पूरे दस वर्ष तक कोई बड़ा साहित्यिक कार्य नहीं बन पड़ा। गत-पूर्व वर्ष श्री डा० राजेन्द्र प्रसाद की कृपा से संविधान परिषद् की कार्यवाही के और उसके पश्चात डा० पट्टाभि सीतारामय्या कृत 'कांग्रेस का इतिहास' के अनुवाद का कार्य लेकर मैंने एक बार फिर अपनी सुषुप्त साहित्यिक प्रवृत्तियों को जाग्रत किया और उसके बाद जो कुछ लिखा वह आपके सामने है।

इतिहास सदा से मेरा प्रिय विषय रहा है। अंग्रेजी की शिक्षा प्राप्त करते समय ही मैंने टॉड साहब की राजस्थान और राजपूत वीरों सम्बन्धी कितनी आदर्श पंक्तियों को कण्ठाग्र कर लिया था और उन्हें अपने जीवन में उतारने का प्रयत्न करता रहा। मैंने 'यात्रा का अन्त' और 'सैनिक' उपन्यासों का प्रकाशनाधिकार साहित्य-मण्डल को दे रखा था किन्तु उसके संचालक न तो अभी तक उन कृतियों के प्रकाशित ही कर सके, न मुझे लौटाने की अनुकम्पा कर सके।

'जब आकाश भी रो पड़ा' आपके हाथ में है। उसकी कथावस्तु न तो कोई प्रच्छन्न और अज्ञात ऐतिहासिक घटना है न कल्पना-प्रसूत। यह एक सर्व-विख्यात् घटना है और लिखित इतिहास से भी अधिक इसके प्रमाण किम्बदन्तियों में मिलते

हैं जो वास्तव में इतिहास के दूसरे रूप हैं। इस उपन्यास का पाठ कृपया वही करें जिनमें करुणा-रस के प्रवाह और वीर-रस के वेग को सहन करने की शक्ति हो और जो भारतीय संस्कृति के प्रति उत्सुकता और जिज्ञासा की भावना रखते हो।

निज कवित्त केहि लाग न नीका।
सरस होइ अथवा अति फीका॥

के अनुसार मैं तो अपनी कृति को उत्तम ही मानता हूँ, क्योंकि उसकी रचना करने में मेरे मानस को विभोर होना पड़ा है; किन्तु इसकी उत्कृष्टता तो तभी सिद्ध हो सकती है जब साहित्य-जगत् और पाठक-संसार इसका समादर करे।

इस कृति की प्रस्तावना इतिहास के मर्मज्ञ लेखक और साहित्यकार प्रो० इन्द्र विद्यावाचस्पति ने लिखकर मुझ पर अपना पुराना प्रेम प्रदर्शित करने की अनुकम्पा की है एतदर्थ मैं आपका अनुगृहीत हूँ।

यह रचना पहले 'रक्तधारा' के नाम से विज्ञप्त हुई थी; पर कथावस्तु करुणा-रस-प्रधान होने के कारण नाम भी करुणा-रस का द्योतक रख दिया गया, आशा है विज्ञ-पाठक इसे स्वीकार करेंगे।

—राजबहादुर सिंह

दिल्ली,
ज्येष्ठ कृष्णा १, सं० २००७

सूची

विषय	पृष्ठ
प्रस्तावना	५
दो शब्द	७
सूची	११
पृष्ठभूमि	१
प्रथमाक्रमण	१८
दुर्ग-प्रवेश	४०
अभिनव-योजना	५३
रत्न-प्राप्ति	८२
उद्धार	१०२
पुनर्ग्रास	१२३
पुनरुद्धार	१४२
उपसंहार	१५६

पृष्ठभूमि

बात आज से लगभग बारह सौ वर्ष पूर्व की है। उन दिनों, यह देश आन्तरिक कलह और बाह्य आक्रमण से प्रायः मुक्त था। देश के एक छोर से दूसरी सीमा तक सुख-समृद्धि और शान्ति का साम्राज्य फैला हुआ था। बौद्ध धर्म का स्वाभाविक ह्रास हो जाने पर भी उसकी उपासना-विधि और तप-मर्यादा का सर्वथा लोप नहीं हुआ था। हिन्दू-संस्कृति अपनी प्रखर तेजोमय दीप्ति से तत्कालीन संसार के सभी सभ्य देशों में अपनी शालीनता, गम्भीरता धीर-वीरता, समृद्धिशीलता और सहिष्णुता एवं तत्त्वज्ञान

में पहले ही से विख्यात् हो चुकी थी। देश के चातुर्वर्ण—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र ही नही, चाण्डाल तक अपने कर्त्तव्य का पालन करते थे और यह विस्तृत महादेश विभिन्न राज्य-सीमाओं में विभक्त होते हुए भी, एक अविभाज्य और अखण्ड एकाई था। हिन्दू राजाओं में, यदि कभी-कभी पारस्परिक संघर्ष भी हो जाते थे, जैसा कि कान्यकुब्जाधिपति हरिचन्द राय के उस पत्र से, जो उन्होंने अरब सेनापति मुहम्मद-बिन-कासिम को लिखा था, स्पष्ट है तो भी वे आपस में ही उसका निबटारा कर लेते थे। महाप्रतापी अलक्षेन्द्र के समय में यूनानी सेनाओं ने भारत में जोकुछ अनुभव प्राप्त किये थे और महामना चाणक्य ने अपनी प्रखर बुद्धिशक्ति से उन्हें जिस प्रकार विफल, अशक्त और कर्त्तव्य-विमूढ़ बना दिया था, उसे देखते हुए अन्य विदेशियों और विधर्मियों को भारत पर फिर एक भी प्रबल आक्रमण करने का साहस नहीं हुआ। चाणक्य के बुद्धिबल और उनकी अद्भुत संगठन-क्षमता ने यूनानियों को जो मात दी और अन्त में उन्हें इस देश के निवासियों ने जिस प्रकार आत्मसात् कर दिया, उसे देखते हुए भारत को कुछ काल तक निश्चित विश्राम मिल गया।

यह सत्य है कि शकों ने भी इस देश की वर्द्धित सम्पत्ति और विस्तारित यश से आकृष्ट होकर, अब से लगभग दो

सहस्र वर्ष पूर्व पश्चिमी सौराष्ट्र और मालवा को अपना प्रताप दिखाने का प्रयत्न किया था; पर महापराक्रमी सम्राट विक्रमादित्य ने उन्हें पराजित कर 'शकारि'-पद प्राप्त किया और भारत की गौरव-गरिमा दिग्दिगन्त में व्याप्त कर दी थी। हूणों ने भी इस ओर मुँह उठाया था, किन्तु उनकी गति भी वही हुई जो उनके पूर्ववर्ती शकों की हुई थी। फिर तो तत्कालीन अन्तर्राष्ट्रीय जगत् में भारत का ऐसा सिक्का जमा कि सातवीं शताब्दी के अन्त तक किसी भी बाह्य शक्ति का साहस भारत पर अभियान करने के लिये नहीं हुआ।

इस प्रकार भारत को लगभग एक सहस्र वर्ष तक वह सुअवसर प्राप्त रहा, जिसमें उसने अपने समस्त स्वाभाविक स्रोतों का तत्कालीन दृष्टि से पर्याप्त विकास किया। आहार-वस्त्र की चिन्ता से मुक्त भारतवासियों ने विविध कला-विद्याओं में अद्भुत नैपुण्य प्राप्त किया। पर्णकुटियों से लेकर विशाल राजभवन तक संगीत की मधुर ध्वनियाँ गूँज उठीं। भोजन और वस्त्राच्छादन के निर्माण की विधियों में लोकोत्तर विकास हुआ। चाँदी-सोने की कौन कहे, मणि-माणिक्यों के आभूषणों और मूर्तियों से सर्वसाधारण तक के घर भरे पड़े थे। वस्त्रों के लिये केवल क्षौम्य—रेशम ही विशेष रूप से काम में लाया जाता था और आहार-विहार की सामग्रियों की इस देश में इतनी प्रचुरता थी कि भिक्षु और

संन्यासियों के अतिरिक्त कोई भी याचक ढूँढ़ने पर नहीं मिलता था। देश में दरिद्रता नाम तक को न थी। आहार-विहार की चिन्ताओं से विमुक्त नर-नारी या तो शिल्प-कला और हस्तकौशल में पारंगतता प्राप्त करने का प्रयत्न करते थे या फिर ब्रह्मज्ञान, अध्यात्मदर्शन और योगाभ्यासमें तल्लीन होकर संसार की भौतिक और दैविक विभूतियों का साक्षात्कार करते थे। तत्कालीन विदेशी पर्यटकों ने स्पष्ट शब्दों में भारत की प्रशंसा करते हुए लिखा है :—

"सारे देश में एक सिरे से दूसरे सिरे तक, कोई स्वर्ण उछालता हुआ चला जाय, तो भी चोर उसे संत्रस्त नहीं कर सकते; लोग अपने घरों में ताले नहीं लगाते, क्योंकि इसकी आवश्यकता ही नहीं थी।"[1] अभाव न होने पर अप-राध की वृद्धि नहीं हुआ करती। सम्राटों और राजाओं की कौन कहे, उन दिनों तो कृषि-वाणिज्य-रत वैश्यों तक के घर स्वर्ण-मुद्राओं और मणि-माणिक्यों से भरे रहते थे और ब्राह्मणों का तो कहना ही क्या! वे तो सम्राटों के भी पूज्य थे। खाद्य और वस्त्रालंकारों में जो सबसे उत्तम, बहुमूल्य और नयनाभिराम वस्तु होती थी, वही देव-भोग्य समझी जाती थी और ब्राह्मणों को ही देवताओं का सान्निध्य और सायुज्य प्राप्त था। यही कारण था कि हमारे मन्दिरों और

---

१. फ़ाहियान की भारत-यात्रा।

मठों में अगणित स्वर्ण और रत्नराशि भरी पड़ी थी।

शान्ति, विकास और नैपुण्य के इस युग में भारतवर्ष ने जोकुछ किया, उसका लवलेश अब भी शेष है। अतः उस काल की उत्कृष्टता सिद्ध करने में यदि हमारे विदेशी विचार-धारा से प्रेरणाप्राप्त इतिहासकार सफल न हुए हों तो इसमें कोई आश्चर्य नहीं। उन दिनों की सामग्रियाँ, जो हमारे सम्मुख हमारे पूर्वजों की कीर्ति का अखंड चित्र प्रस्तुत कर सकती थीं, विधर्मी शासकों और लुटेरों के हम्माम गरम करने के काम आगईं। उस स्वर्ण-युग में, भीषण विघ्न-बाधा, कोलाहल, प्रचण्ड संघर्ष, कटुता, लूटपाट, रक्तपात और घृणा का घातक सन्देश लेकर पश्चिम से एक ऐसी शक्ति आई, जिसकी लोलुप दृष्टि भारतवर्ष के स्वर्ण-रत्न-भाण्डार, मानवीय सौन्दर्य और सर्वव्यापक समृद्धि पर पहले ही पड़ चुकी थी। यह शक्ति अब इसे लूटने के लिये बहाने ढूँढ़ने में लगी थी, और जैसा कि अगले पृष्ठों में वर्णन किया गया है, उसने अपनी दृष्टि से इसके लिये समुचित उपाय भी खोज निकाला।

यह शक्ति कोई और नहीं—तत्कालीन असंस्कृत इस्लाम की थी जो उस समय तक अपने शैशव-काल में था। उसमें नई उष्णता, नया साहस और नई कट्टरता भरी थी। इस्लाम में, सभी इतर धर्मावलम्बियों को अपने पाक मजहब में

शामिल करने, और न मानने पर लूटने, मारने की छूट-सी थी—उसके मुजाहिदों के एक हाथ में कुरान और दूसरे में तलवार थी। ऐसी अवस्था में, उनके तत्कालीन खलीफा ने यदि शान्तिप्रिय, हिंसाहीन और स्वर्ण-रत्नराशि-सम्पन्न 'काफिरों' को लूटने, मारने और उनकी रूपराशि समन्विता लड़कियों को अपने भोग के लिये उड़ा ले जाने की आज्ञा दे दी, तो इसमें आश्चर्य ही क्या था।

× × ×

भारत अपनी प्राचीन संस्कृति और आत्मगौरव के कारण समस्त संसार के मानव-समाज का मुकुट-मणि बन चुका था और सबके साथ उसकी सहानुभूति और सदेच्छा थी। उसने पार्श्ववर्ती देशों—गांधार (अफगान इलाका, जिसमें अब भी 'कन्धार' कहा जानेवाला नगर है), बलोच्चस्थान (बलोचिस्तान), पुष्टाहार (पोठेहार क्षेत्र, जिसमें आजकल रावलपिण्डी और जेहलम के इलाके हैं), सिंहल द्वीप (वर्त्तमान लंका या सीलोन), ब्रह्मदेश, श्याम, हिन्दचीन, यवद्वीप (जावा), बालिद्वीप, सुमात्रा टापू और चीन-जापान तक ही अपनी संस्कृति का सन्देश नहीं पहुँचा दिया था, प्रत्युत दक्षिणी अमेरिका के सभी वर्त्तमान स्पेनिश-भाषी मैक्सिकन भी उसके प्रभाव में आ गये थे। इधर पश्चिम में, वर्त्तमान रूस का प्रधान तैल नगर बाकू, उसकी सांस्कृतिक

सीमा बन गई थी। यहाँ मध्ययुग का निर्मित देवी-मन्दिर अब भी अस्तित्व में है।[1] आश्चर्य है, कि अन्तर्राष्ट्रीय जगत् में इतना नाम प्राप्त कर और धन-धान्य और शक्ति से पूर्णतः सम्पन्न होने पर भी, भारत ने कभी किसी विदेश पर आक्रमण नहीं किया और उसे तलवार के बल से जीतने की आकांक्षा नहीं की। उस समय भी, उसके अशोक, कनिष्क और हर्षवर्द्धन-जैसे शासकों ने अधिक से अधिक यही किया कि पाल से चलनेवाले वेगवाही पोतों पर अपने कुछ संस्कृति-प्रचारक पूर्व की ओर चीन तक भेज दिये, जिस के शुभ परिणामस्वरूप हम आज भी देख रहे हैं कि समस्त पूर्वीय एशिया (चीन-जापान) और दक्षिण-पूर्वीय भाग पर हिन्दू-संस्कृति की गहरी छाप का अस्तित्व है। प्रस्तुत् उपन्यास का विचारणीय विषय न होने के कारण, हम इस विषय को यहाँ विस्तारपूर्वक नहीं दे रहे हैं, पर यह बात सुनिश्चित है, कि पूर्वीय ही नहीं, उत्तरीय एशिया— विशेष रूप में सोवियत रूस भी, जैसा कि महापण्डित राहुल सांकृत्यायन के लेखों और ग्रन्थों से स्पष्ट है, हिन्दू-संस्कृति और संस्कृत भाषा के प्रभाव से मुक्त नहीं है। आर्यान (ईरान) तो आर्यों की भूमि था ही, और इस्लामी प्रपीड़न के कारण वहाँ से भागे हुए फारसी (पारसी) बन्धुओं ने उन

१. महापण्डित राहुल सांकृत्यायन कृत 'वोल्गा से गंगा।'

दिनों भाग कर और कहीं जाने की अपेक्षा भारत आना ही उचित समझा, क्योंकि, उस सर्वशक्तिसम्पन्नता के काल में भी, भारत इस बात के लिये अन्तर्राष्ट्रीय जगत् में विख्यात् था, कि यहाँ के राजा और प्रजाजन परधर्मावलम्बियों को प्रपीड़न और बलात्कार-द्वारा अपने धर्म में नहीं मिलाते और यहाँ के समस्त निवासियों में मानवमात्र के लिये ऐसी तलस्पर्शी सहानुभूति है कि यहाँ आकर बस जानेवाला अपनी पितृभूमि में रहने के समान ही अनुभव करता है।

× × ×

भारत का द्वार, विदेशी व्यापारियों के लिये सदा से खुला रहा है। उसने, अपने अपूर्व वैभव और शासनाधिकार के युग में भी, कभी विदेशियों और विधर्मियों के लिये अपना द्वार बन्द नहीं किया। इसीलिये, अज्ञात काल से ही यहाँ पूर्व, पश्चिम और उत्तर, तीनों दिशाओं के व्यापारी, अपनी-अपनी मूल्यवान विक्रय-सामग्रियाँ लेकर आते और उन्हें पर्याप्त लाभ से बेच कर भारत की विशिष्ट बहुमूल्य सामग्रियाँ क्रय करके स्वदेश ले जाते और इस प्रकार दोनों ओर के व्यापार-द्वारा लाभान्वित होते थे। यह सत्य है कि उन दिनों, तीव्र वेगवाही वाहन न होने के कारण विदेशी इस प्रकार का व्यापारिक व्यवहार वर्ष में एक बार

से अधिक नहीं कर पाते थे; पर उस एक बार के व्यापार में ही उन्हें इतना लाभ हो जाता था कि उन्हें कोई कमी न रहती थी और वे सुख से जीवन व्यतीत कर सकते थे।

किन्तु, जैसा कि हमने अगले पृष्ठों में बताया है, विदेशियों को मुक्त व्यापार की सुविधा देकर भारत ने जहाँ एक ओर अपनी उदारता, सहिष्णुता और उच्च मानव भावना की दुन्दुभी संसार भर में बजायी, वहाँ इसने खोया भी बहुत है। इस नीति के कारण इसकी जो आर्थिक और राजनीतिक क्षति हुई है, उसका इसने कभी हिसाब ही नहीं लगाया। इसका मूल कारण यही रहा है कि इस देश ने, कभी पूर्णतः वैश्य-वृत्ति का समावेश राजनीति में नहीं होने दिया और न निम्न स्तर की भावनाओं को राजनीति में संश्लिष्ट होने दिया है। इसकी राजनीति सदा से ब्राह्मणोचित्त भावनाओं से ही परिचालित होती रही है। ब्राह्मण अपने त्याग और तपस्या का समावेश राज-काजों में भी करते रहे हैं। परशुराम ने 'बिपुल बार महि देवन दीन्हीं' के अनुसार भले ही क्षत्रियों से राज्य छीन-छीन कर ब्राह्मणों को दिया, पर ब्राह्मण कभी राजकाज को पूर्णतः अपना नहीं सके—उन्होंने, ऐहिकता की ओर ले जानेवाले राजकाज को फिर क्षत्रियों को समर्पित कर दिया। चाणक्य ने, केवल अपने बुद्धिबल से, राजकाज हस्त-गत किया; पर उसे चन्द्रगुप्त मौर्य को सौंपकर वे स्वयं हिमालय

की तराई में स्थित अपनी पर्णकुटी की ओर चले गये। यही क्यों, अभी कल की सी बात है, पूना में पेशवाओं ने राजधानी स्थापित कर स्वयं राजकाज का संचालन आरम्भ किया, किन्तु, ब्राह्मण-धर्म की विशिष्ट परम्परा ने उनके हाथ से शासन-सूत्र खींच लिया। अस्तु, भारतीय राज्यशासन में, ब्राह्मण स्वयं शासक बनने से भले ही बचते आये हों, क्यों कि उनकी मान्यता थी कि तप से राज्य मिलता है और राज्य से नरक; पर प्रत्येक आर्य शासक के पीछे मस्तिष्क ब्राह्मणों ही का काम करता रहा है, इस तथ्य को अस्वीकार नहीं किया जा सकता।

ऊपर जिस ब्राह्मणोचित उदारता का उपयोग भारतीय शासक वाणिज्य-क्षेत्र में भी करते आये हैं, उसके फल-स्वरूप ही सम्राट् चन्द्रगुप्त के समय में यूनानियों ने भारत पर आक्रमण किया। बात यह थी, कि भारत में आकर व्यापार करनेवाले विदेशी जब स्वदेश लौटते थे, तो यहाँ के शासकों और सर्वसाधारण की सम्पन्नता, उदारता और सौजन्य का वर्णन करके अपने देश के शासकों के मुँह में पानी भर देते थे। यूनानी व्यापारियों के वर्णन सुनकर ही यूनानी योद्धा भारत पर आक्रमण करने के लिये अलक्षेन्द्र के साथ आये थे, और विश्व-विजय की अभिलाषा अपने हृदयों में समेटे हुए भारत का लोहा मान लेने के बाद, जब उन्होंने

प्रत्यावर्त्तन का निश्चय कर लिया, तो अलक्षेन्द्र अपनी सारी बुद्धि और शक्ति लगा कर भी उन्हें नहीं रोक सका। इसी प्रकार शकों और हूणों ने व्यापारियों-द्वारा ही भारत की सर्व-सम्पन्नता का वर्णन सुन कर इस देश पर आक्रमण किया था, पर भारत के सौभाग्य से उन्हें न केवल कुछ ही समय के पश्चात् पराजित होना पड़ा, वरन् इसी देशमें अपना अस्तित्व तक विलुप्त कर देना पड़ा।

× × ×

इस प्रकार, हम देखेंगे कि व्यापार-सम्बन्ध के कारण, भारत फिर अपने स्वर्गोपम सुखों से ग्लानि के गह्वर में पतित हो गया और फलस्वरूप, इसे दारुण दुःखों के दावानल में विदग्ध होना पड़ा। अरब-व्यापारियों की, इस देश में ईसा की पांचवीं शताब्दी से ही आवा-जाही थी और मानव स्वभावानुसार उन्होंने भी इस देश की सम्पन्नता और सुखों का वर्णन अपने देश में जाकर किया। उन दिनों अरब-देशों में जीवन-यात्रा बड़ी कठिन थी और वहाँ के सर्व-साधारण के लिये सुख-सामग्री प्राप्त होना दुर्लभ बात थी। ऐसी दशा में, भारत-जैसे भूस्वर्ग के प्रति उनके मन में लोलुपता का उदय और लालन-पालन सरलतापूर्वक किया जा सकता था। भारत से लौट कर अरब-व्यापारी अपने देश के शासकों और निवासियों से इस देश के शासकों और प्रजाजन की

2136

सादगी, भोलेपन और उत्कृष्टता का वर्णन करते थे, उनके धन-धान्य स्वर्ण-रत्न-भण्डार की कहानियाँ सुनाते थे और सबसे बढ़ कर, यहाँ के अभावहीन जीवन के चित्रों-द्वारा उनका ध्यान इधर आकर्षित करते थे। उन दिनों संसार के—विशेष कर वर्त्तमान एशिया के अन्य देशों की भाँति अरब-देशों में भारत की प्रशंसा की कहानियाँ परम्परागत रूप में कही-सुनी जाने लगी थीं।

इस प्रशंसा का परिणाम निकलना ही था और निकला भी। जैसा कि ऊपर कहा गया है, पश्चिमी एशिया में इस्लाम के नाम से एक नये मज़हब का उद्भव हुआ, जिसके श्रेष्ठतम शासक, ख़लीफ़ा माने जाते थे। सातवीं शताब्दी के आरम्भ में, अपनी बग़दाद-स्थित राजधानी में बैठे-बैठे एक ऐसे ही ख़लीफ़ा ने, भारत से लौटे हुए अपने देश के व्यापारियों से स्वर्ण और रत्नादिक-निर्मित सुन्दरतम वस्तुओं का उपहार प्राप्त किया तो उस की जिज्ञासा भारत के प्रति बहुत बढ़ गई। व्यापारियों ने उसे समझाया कि भारत संसार का नन्दन-कानन है और वहाँ से अनन्त धन और रूप की राशि प्राप्त हो सकती है। ख़लीफ़ा ने इस्लाम के प्रचार और स्वर्ण, रत्न एवं रूपराशि की प्राप्ति की संयुक्त योजना बना ली और उसकी पूर्ति के लिये आवश्यक कुचक्र भी रच लिये। इस कुचक्र के अनुसार ख़लीफ़ा ने तत्कालीन पश्चिमीय भारत—

—सिन्धु-प्रदेश के प्रतापी शासक महाराज दाहिरराय को एक पत्र लिखा जिसका सारांश इस प्रकार था :—

"......श्रीमान की रिआया ने, हमारे ताजिरों का पूरा क़ाफ़िला देवल के किले से करीब बीस मील के फ़ासले पर लूट लिया है। इस क़ाफ़िले के साथ, पौने चार लाख दीनार[1] का माल था जिसमें से कुछ भी नहीं बचा। आपका फ़र्ज़ है, कि इस हर्जाने की रकम आप हमारे नुमाइन्दों को अपने सोने के सिक्कों में अदा कर दें और इस तरह इस झगड़े को आगे बढ़ने से रोकें। ......"

कहने की आवश्यकता नहीं कि आर्य शासक भीरु नहीं थे और वे मिथ्या लांछन से घृणा करते थे। उनमें भय होता तो शत्रुओं को अपनी मुट्ठी में पाकर भी उन्हें छोड़ देने की प्रवृत्ति उनमें न बढ़ती और न शत्रु-शक्ति की उपेक्षा की भावना ही विकसित होती। महाराज दाहिरराय ख़लीफ़ा का यह पत्र पाकर अत्यन्त क्रुद्ध हुए और उन्होंने उसके अरब नुमाइन्दों को वहीं तलवार के घाट उतार देने की आज्ञा दे दी, किन्तु मंत्रिवर शशिकर ने दूत-द्वारा घोरतम अपराध हो जाने पर भी उसे अवध्य बतलाया और ख़लीफ़ा के पत्र का एक उत्तर लिख कर उनके हवाले कर दिया।[2] इस पत्र का

१. फ़ारसी स्वर्ण-मुद्रा।

२. चचनामा—इलियट कृत अंग्रेज़ी अनुवाद।

सारांश इस प्रकार था:—

"......आपके पत्र में लिखी गई सारी बातें निराधार प्रतीत होती हैं। यदि आपके व्यापारियों का माल कहीं लुटा भी होगा तो वह हमारी सीमा में नहीं। देवल किले से बीस मील की दूरी पर ऐसी कोई घटना नहीं हुई। सम्भव है, व्यापारियों का माल आप ही की सीमा में लुटा हो और वह क्षति-पूर्ति आप हम से कराना चाहते हों। आप इस विषय की पूरी जाँच-पड़ताल कर के ही समुचित कार्यवाही करें।... हमारे यहाँ दूत अवध्य होता है. इस कारण, आपको ऐसे पत्र का, जो छल, धूर्तता और कुचक्र से पूर्ण प्रतीत होता है, उत्तर मिल रहा है, अन्यथा ऐसे मिथ्या लांछनपूर्ण पत्र का वाहक लौट कर न जाने दिया जाता ......"

× × ×

सिन्धुराज का पत्र पाकर ख़लीफ़ा को आग लग गई। काफ़िर राजा ने उसकी धूर्तता और कुचक्र का ऐसा धृष्टतापूर्ण जवाब दे दिया। उसके लिए यह स्थिति वैसे भी असह्य होती, क्योंकि वह जानता था कि मिथ्या आरोप से डर कर आर्य शासक स्वर्ण-मुद्रा नहीं देनेवाले हैं, पर उसे तो अपने आक्रमण के लिये बहाने की पृष्ठभूमि बनानी थी, जो अब तैयार हो गई। उसने अपने नव-नियुक्त सेनापति मुहम्मद-

बिन-क़ासिम[1] को बुला भेजा और उसके आने पर इस प्रकार बातचीत की :—

"मुहम्मद।"

"हज़रत।"

"तुम मेरे अज़ीज़ भी हो और वफ़ादार भी। मैं आज एक ख़ास काम पर तुम्हें तैनात करना चाहता हूँ।"

"हुज़ूर, बन्दा हुक्म का मुन्तज़िर है।"

"तुम्हें याद है, मैंने काफ़िर राजा को पैग़ाम भेजने से पहले तुमसे कुछ कहा था ?"

"हाँ हुज़ूर; हुज़ूर ने यह फ़रमाया था कि हिन्द पर हमला करने की पूरी तैयारी कर रखना।"

"ठीक है, तुम्हें लफ़्ज़-बलफ़्ज़ याद है। पर, क्या तुमने उसकी तैयारी पूरी कर ली।"

"कर ली हुज़ूर। दस हज़ार घुड़-सवार और पचीस हज़ार पैदल सिपाही तैयार कर लिये हैं। नाफ्तावालों[2] की भी एक अलग फ़ौज तैयार कर ली गई है, जिसमें दो हज़ार सीरियन हैं। साँड़िनी-सवार और सामान ढोने के लिये लद्दू ऊँट भी पाँच हज़ार की तादाद में तैयार कर लिये गये हैं।"

"ठीक है, तुम बहुत होशियार हो। इसीलिये बहुत-से

---

१. 'बिन' शब्द 'इब्न' का संक्षिप्त रूप है जिसका अर्थ है 'पुत्र'।

२. तीरन्दाज़ों।

पुराने तुजुर्बेकार और सिन-रसीदा सिपहसालारों के बदले तुम्हीं को हिन्द पर फ़तेह पाने और दीने-इस्लाम की तबलीग़ के लिए भेज रहा हूँ। पर तुम जानते हो, सबसे पहले तुम्हें ज़र और जवाहरात, हूर और परियों की सौग़ात का ध्यान रखना होगा।"

"यह तो मानी हुई बात है हुजूर।"

"अच्छा तो लो, यह कुरान शरीफ़ कलामे-मजीद हाथ में और खाओ अल्लाह पाक की क़स्म, कि तुम वहाँ जाकर खुद सोने और जवाहरात का एक टुकड़ा भी अपने पास नहीं रखोगे और कोई भी हूर शुमाइल अपने कब्जे में न रख कर सीधे मेरे पास भेजोगे।"

"मैं कुरान शरीफ़ क़लामे-मजीद और अल्लाह पाक की क़स्म-खाकर कहता हूँ, कि मैं हिन्द में जो भी लूट का माल हासिल करूँगा, चाहे वह सोना और जवाहर हो या हुस्न की परी, सीधे हुजूर की ख़िदमत में भेज दूँगा।"

"और मेरा हुक्म पाते ही फ़ौरन बग़दाद आ जाओगे।"

"हुजूर का हुक्म पाते ही सर के बल बग़दाद पहुँच जाऊँगा।"

"तो जाओ, खुदा हाफ़िज़; वापस आने पर इस ख़लीफ़ा की गद्दी के हक़दार तुम्हीं होगे मुहम्मद।"

"जो हुक्म हुजूर।"

खलीफ़ा ने इस बातचीत के पश्चात् एक राजपत्र—द्वारा, मुहम्मद-बिन-क़ासिम को अपनी ओर से भारत में सभी प्रकारकी कार्यवाही—राज्य-स्थापन, राज-संचालन, विग्रह-सन्धि, दण्ड-शासन, कर, न्याय, मजहब-के प्रसार आदि के समस्त अधिकार प्रदान कर दिये और यह भी लिख दिया कि चूँकि काफ़िर राजा ने हमारे ताजिरों का हर्जाना अदा नहीं किया, लिहाजा उसके राज्य पर चढ़ाई करके उसे फ़तह किया जाय और उसे, जिन्दा या मुर्दा, जिस तरह भी हाथ लगे, हमारे पास भेजा जाय। उसकी हीरे-जवाहरात और सोने की चीजें कब्जे में आते ही बगदाद भेज दी जायँ और उसकी दोनों खूबसूरत बेटियाँ भी, जिनकी मिसाल गंगा और जमना, सूरज और चाँद से दी जाया करती है, हाथ लगते ही बगदाद के लिए रवाना करदी जायँ।

इस तरह खास फ़रमान पर, खलीफ़ा ने यह भी हुक्म सादिर फ़रमाया, कि सिपहसालार मुहम्मद-बिन-क़ासिम के हमराह ६००० सीरियन घुड़-सवार और ३००० ऊँट-सवार भी जायँ।[१] बाक़ी जरूरी अशिया जो खाने-पीने और आराम के लिये लाजिमी हैं, साथ भेजने का हुक्म भी हो गया।

१. हिस्ट्री आफ इण्डिया—(मध्यकालीन) जा० इ० कृत।

: १ :

प्रथम आक्रमण

"सुनसान रात में यह कैसा कोलाहल ?"

"जैसे आँधी आ रही हो !"

"दक्षिण-पश्चिम की ओर से जैसे कोई जन-प्रवाह उमड़ता चला आ रहा हो !"

"नहीं, नहीं; अभी तो आधी रात ही बीती है—जन-प्रवाह और इस समय ?"

"क्यों नहीं, कोई यात्रियों का दल मार्त्तण्ड के मेले के

लिए जा रहा होगा। गर्मियों के दिन ठहरे; यात्रा रात की ही ठीक होती है।"

"व्यर्थ की बात है, इस समय कौन यात्री-दल जा सकता है...लोग एक पहर रात रहने पर प्रस्थान करते हैं...पर यह क्या ? प्रकाश भी तो दिखाई दे रहा है, अभी-अभी कोई वस्तु जल कर बुझ-सी गई है।"

"अरे सुनते नहीं, घोड़ों की टाप सुनाई दे रही है। निरीक्षक महोदय को जगा दो।"

रावर-दुर्ग से कुछ दूर नदी के तट पर सिन्धुराज की आज्ञा से जो विशेष पहरा बिठाया गया था उसमें आठ जागरूक, दो निरीक्षक, एक अध्यक्ष के अतिरिक्त एक छोटी-सी सैनिक टुकड़ी भी थी। इन सबके ऊपर प्रधान प्रहरी था। आधी रात व्यतीत होते ही जो दो नये पहरेदार नियुक्त थे, उन्होंने अपने कर्त्तव्य का पालन करते हुए ऊपर की बातचीत की, और उनमें से एक ने जाकर निरीक्षक को जगा कर आगन्तुकों के आरव की सूचना दी, और निरीक्षक ने कुछ पर्यवेक्षण के पश्चात् प्रधान प्रहरी को जगा कर किसी शत्रु के नैश अभियान की सूचना देदी।

प्रधान प्रहरी ने, सैनिक टोली के अध्यक्ष को तत्काल जगाया और इस प्रकार सबको सजगकर यह सूचना घुड़-सवार-द्वारा दुर्ग-स्थिति महाराज दाहिरराय को लिख भेजी

कि सम्भवत: अरबों की सेना हमारी चौकी से लगभग एक कोस की दूरी पर आ पहुँची है, अत: दुर्ग से अविलम्ब सैनिक दल भेजने की व्यवस्था कर दी जाय।

सन्देश तो भेज दिया गया; परन्तु प्रधान प्रहरी और सैनिक टोली के संचालक को यह देख कर आश्चर्य और सन्देह हुआ कि वह एक-एक कर प्रज्ज्वलित हो उठनेवाला प्रकाश अब पूर्णत: अदृश्य हो गया है। जन-प्रवाह का झञ्झा-वात-सदृश स्वर भी अब नहीं सुनाई दे रहा है। उन्होंने सोचा, कहीं यह उन लोगों का भ्रममात्र तो नहीं था; पर प्रकाश तो स्पष्ट दिखाई पड़ा था,—प्रवाह का स्वर भी काल्पनिक नहीं था। प्रकाश तो किसी ग्राम-दीप का भी हो सकता है, जन-प्रवाह का स्वर भी वायु का एक झकोरा-मात्र हो सकता है, पर घोड़ों की टाप की ध्वनि, जो अभी कुछ ही देर पहले स्पष्ट सुनाई दे रही थी, कहाँ विलुप्त हो गई? अन्धकार के गर्भ में ये सभी वस्तुएँ कहाँ विलीयमान हो गईं। कहीं सचमुच यह भ्रम ही ठहरा, तो हमारा बड़ा उपहास होगा। शीघ्र ही एक दूसरा वेगवान घुड़-सवार भेज कर पहले सन्देश को रुकवाना चाहिये, नहीं तो, अभी दुर्ग से विशाल सैन्य-दल आ पहुँचेगा और हमें अपने अयोग्यता-पूर्ण पर्यवेक्षण के लिये उत्तरदायी होना पड़ेगा। कैसी भूल हो गई हमलोगों से—हम यह भी तो नहीं सोच पाये कि

यदि कोई शत्रु-दल इधर आयेगा भी, तो नदी तो बीच में है, क्या वह पानी पर चलकर इस पार आ जायगा। उसे नदी पार करने में तो बहुत समय लगेगा, तब तक क्या हम सूचना भेज कर अपनी और सेना नहीं मँगा सकते। इस प्रकार की बातें करके और पहला सन्देश रोकने के लिये दूसरा अश्वारोही भेजकर प्रहरी-दल के अधिकांश सदस्य निश्चिन्त होगये। निश्चिन्तता निद्रा की जननी होती है, अतः आगन्तुक आशंका से मुक्त होते ही वे पुनः निद्राभिभूति होगये।

× × ×

उधर खलीफ़ा के प्रधान सेनापति ने अपर्याप्त रूप में रक्षित और आक्रमण के लिये खुले देवल-दुर्ग पर आकस्मिक आक्रमण कर उसे जीत लिया था और उसी विजय के गर्व से उन्मत्त हो वह शीघ्रातिशीघ्र रावर-दुर्ग पर भी विजयी होने की अभिलाषा से द्रुत वेग से बढ़ा चला आ रहा था। जब उसकी सेना, उस नदी-तटस्थित चौकी से एक कोस की दूरी पर पहुँच गई तो उसने उसका वेग वहीं रोक लिया। उस जगह राजमार्गका चौराहा था। वहाँ से सड़कें चारों दिशाओं को जाती थीं। वहाँ भी महाराज दाहिर के कुछ पहरेदार और कराधिकारी थे, पर उन्हें मुहम्मद-बिन-क़ासिम ने बन्दी बना लिया। मशालें बुझा दी गईं जिससे वह नदी के पूर्व में स्थित चौकी के प्रहरियों को दिखाई न दें और आधी रात

ढलने के बाद एक पहर के लिये वहीं डेरा डाल दिया गया। इसके पश्चात् मुहम्मद-बिन-क़ासिम ने अपने सहकारियों को बुला कर आदेश देना आरम्भ किया:—

"अल्तमश, तुम अपनी टुकड़ी लेकर दरिया की ओर बढ़ो और घाट पर मौजूद किश्तियों का पुल बाँधने की तैयारी करो। तुम्हारे पीछे दो सौ घुड़सवार एक घंटे बाद जायँगे। नाफ्तावालों की टोली तुम्हारे साथ जायगी और वह नदी के इस पार के दरख्तों पर चढ़ कर वहीं से दुश्मन पर तीरन्दाज़ी करेगी।"

"शम्स, तुम जनूबी सड़क पर तैनात किये जाते हो—इधर से सारी आमदोरफ्त बन्द रखो—सौ शहसवार तुम्हारे साथ होंगे।"

"ताहिर, तुम चौपड़ से शुमाली जानिब को जानेवाली इस सड़क की नाकाबन्दी करो, और सौ घुड़सवार तुम भी हमराह लेते जाओ।"

"और फैज़, तुम मग़रिबी हिस्से की तरफ़ रहो—तुम्हारे साथ पचास घुड़सवार काफी होंगे। तुम इस सड़क को अपनी रसद और सामान आने के लिये खुली रखो।"

सब सतर्कतापूर्वक अपने-अपने कार्य पर लग गये, और नदी की ओर बढ़नेवाली अल्तमश की टोली के साथ स्वयं मुहम्मद-बिन-क़ासिम भी हो लिया। आध घंटे में यह विचित्र

अश्वारोही दल, जिसमें नाफ्ताधारी और पैदल सभी थे, नदी के पश्चिमीय तट के निकट पहुँच गया। अश्वारोही सैनिक कुछ पीछे ही रोक लिये गये थे जिससे उनके घोड़ों की टापों के शब्द से पूर्वीय तट के लोग सजग न हो उठें। अल्तमश का शिल्पी दल सेतु-निर्माण के लिये सभी सामानों के सहित तट पर पहुँच कर घाट पर स्थित नौकाओं को जोड़-जोड़ कर पुल बनाने के कार्य में लग गया।

जब रात केवल दो घटिका रह गयी और निकटवर्त्ती आरब से प्रहरी जाग उठे तो उन्होंने हक-बका कर अपने सभी साथियों—प्रहरियों और सैनिकों को जगा दिया। प्रधान प्रहरी को अब अपनी भूल का ज्ञान हुआ। उसने तत्काल एक प्रबल वेगवान अश्वारोही को इस सन्देश के साथ दुर्ग की ओर भेजा कि नदी के पश्चिमीय तट पर शत्रु आ पहुँचा है—अतः सैन्य-दल तुरन्त भेजे जायँ। जो छोटी सी टोली प्रधान प्रहरी के पास थी उसे उसके नायक के साथ नदी-तट पर जाकर निकट से निरीक्षण करने का आदेश प्रहरी प्रवर ने दे दिया।

आर्य-सैनिकों की यह टोली जब निरीक्षण के लिये चौकी से नदी-तट की ओर पहुँची तो पौ फट चुकी थी और पूर्व दिशा से उषा अपना सन्देश लालिमा-द्वारा धरातल को पहुँचा रही थी। दूरस्थ वस्तुएँ भी अब दृष्टिगत होने लगी थीं।

उन्होंने देखा कि नदी के पश्चिमीय तट पर बहुत-से लोग बड़ी शीघ्रता के साथ कुछ सामान उठाने-धरने और नावों को बाँधने में लगे हैं। वह उत्सुकतापूर्वक इस कार्य-कलाप को अधिक स्पष्ट रूप में देखने के लिये किनारे की ओर कुछ आगे बढ़े ही थे कि सहसा शतशः तीरों की बौछार ने सनसनाहट की ध्वनि के साथ उनके अग्रगामी भाग को धराशायी कर दिया। उनमें से जो लोग तत्कालीन मृत्यु से बच गये, उन्होंने इस आकस्मिक और अनभ्र वज्रपात-सदृश प्रहार की दिशा देखने के लिये दृष्टि उठायी। उन्होंने देखा कि दूसरे ही क्षण, उनके साथी सबके सब सैनिक उन्हीं के समान धरती पर पछाड़ खा-खाकर लोट रहे हैं। यह अद्भुत प्रहार हुआ कहाँ से और कैसे ? उस तट पर कार्य-व्यस्त शिल्पियों के अतिरिक्त कोई सैनिक भी तो प्रत्यक्ष रूप में नहीं दिखायी दे रहा था। जो लोग अभी तक जीवित बचे थे और धरती पर पड़े दम तोड़ रहे थे वे मरते-मरते इस अज्ञात रहस्य को न समझ पाये कि उनकी मृत्यु का कारण क्या है ? यह मृत्यु की बौछार क्या उनके लिये आकाश से हो रही है ?

थोड़ी देर बाद, जब प्रहरियों की टोली अपने सैनिक साथियों की टोह लेने आई तो उसकी भी वही गति हुई। वह भी पश्चिमी तट के वृक्षों पर बैठे तीरन्दाजों के प्रहार से धराशायी हो गई। मरणासन्न प्रहरियों के चेहरों पर अद्भुत

आश्चर्य और हक्के-बक्केपन का भाव था। वे इस अभिनव आक्रमण के मूलस्रोत को बिना जाने ही अपने पूर्ववर्त्ती भाइयों के पथानुगामी बन गये।

× × ×

प्रधान प्रहरी तो अपने सहकारियों और सैनिकों सहित सुरधाम सिधार चुके थे, पर उनका सन्देश दुर्ग-द्वार तक पहुँच गया था। द्वारपाल ने सन्देश दुर्ग के भीतर अन्त:पुर को भिजवा दिया। महाराज उस समय अपनी द्वितीय नवोढ़ा पत्नी के पर्यंक पर थे जहाँ दासियों तक का प्रवेश-निषेध था। सन्देश के महाराज तक पहुँचने में बहुत विलम्ब और कठिनाई हुई। अन्त:पुर की सभी रमणियाँ प्रभातकालीन कोमल मलय-समीरके स्पर्शसे गम्भीर निद्रा में निमग्न थीं। उषा अपना सस्मित माधुर्य बखेर चुकी थी। राजप्रासाद की वाटिका पक्षियों के कलरव से मुखरित हो उठी थी और पुष्पों का सौरभ प्रासाद के वातायनों-द्वारा शयन-कक्षों में भर गया था। सभी पर निद्रादेवी का साम्राज्य छाया हुआ था, अतः पहले उन्हें जगाने और फिर उनके द्वारा द्वितीय महारानी के शयनकक्ष में मध्यनैश्य-क्रीड़ान्तर-सुषुप्त महाराज को जागरित करना कठिनतर कार्य था। महाराज की लाड़ली प्रिया लाड़ीदेवी उस प्रात सौरभ से प्रमत्त-सी होकर पर्यंक पर मूर्च्छिता-सी पड़ी थीं। ऐसी दशा में, किसी भी उपाय से उनके द्वारा महा-

राज को जगाना सम्भव न था। निदान, द्वारपाल ने एक दूसरी युक्ति से महाराज को जगाना उपयुक्त समझा। यद्यपि उसे पता था कि उस समय महाराज अपनी नवोढ़ा पत्नी के शयन-कक्ष में हैं, क्योंकि अन्तःपुर की सेविकाओं ने उसे सब कुछ बता कर अपनी अशक्तता प्रकट कर दी थी, फिर भी, द्वारपाल ने अवसर का महत्त्व देखते हुए और मंत्रिवर शशिकर के अनुपस्थित होने के कारण, महाराज के शयन-कक्ष में लगे घंटे को बजा दिया। यह घंटा वैसे तो प्रजाजन के लिए था और इसका उपयोग तभी किया जा सकता था जब किसी के प्राणों पर संकट आ पड़े, पर द्वारपाल ने यह सोच कर उसे बजा दिया कि जब एक नहीं सहस्रों और लक्षों प्रजाजनों के प्राणों का संकट शत्रु के आक्रमण से आ उपस्थित हुआ है तो ऐसे घंटे का उपयोग न करना महामूर्खता होगी।

अस्तु, घंटा बजने पर जब महाराज की निद्रा भंग हुई और वे उठ कर किसी प्राण-पीड़ित प्रजा की पुकार सुनने को न्याय-कक्ष में आये तो उन्हें प्रधान प्रहरी का सन्देश प्राप्त हुआ। महाराज शत्रु के आ पहुँचने का समाचार पा पहले तो चौंक उठे, फिर धैर्य धारण कर अपने सदैव के नियमानुसार राजज्यौतिषी को बुलवाया। राजज्यौतिषी ने राशियों और नक्षत्रों की समुचित रूप से गणना की और फिर उनका मिलान करके कहा—"महाराज, शुक्र आपके सम्मुख पड़ेंगे,

अतः इस समय शत्रु से युद्ध करके आप विजयी नहीं हो सकते।"

"तो फिर इसका उपाय ?"

"उपाय यह है कि शुक्राचार्य की स्वर्णमूर्ति आपके हाथी की अम्बारी के पीछे बाँध दी जाय, इससे शुक्र आपके पीछे हो जायँगे और पराजय की आशंका मिट जायगी।"

महाराज तुरन्त तैयार हो गये। हाथी अविलम्ब तैयार किया गया। दुर्ग-स्थित सैन्य-दल तैयार हुआ। गद्दी के ऊपर हाथी के हौदे के पीछे शुक्रदेव की स्वर्ण-मूर्ति राजज्योतिषी के आदेशानुसार बाँध दी गई और महावत ने शीघ्रतापूर्वक हाथी के हौदे में महाराज को बिठा कर आदेशानुसार नदी-तट की ओर हाथी को वेगपूर्वक चलाया। अश्वारोही सैन्य-दल महाराज के हाथी के साथ-साथ आगे बढ़ा।

× × ×

इस बीच, नितान्त अबाधित रूप और शीघ्र गति से अरबों ने नदी पार करने के लिये पुल तैयार कर लिया और महाराज के नदी-तट पहुँचने तक मुहम्मद-बिन-क़ासिम की आधी सेना नदी के पूर्वीय तट पर उतर कर अपने स्वामी के आदेशानुसार यथास्थान नियुक्त हो गई थी। तीरन्दाजों ने अपने लिये इस तट के वृक्षों पर नये अड्डे बना लिये थे। घुड़-सवार सेना एक पार्श्व में थी, पदाति सैनिक सामने जम

कर खड़े थे। महाराज ने अपनी चौकी पर आकर देखा तो वहाँ एक भी आदमी न था। और आगे-बढ़ कर उन्होंने शत्रु-दलकी ओर अपना एक श्वेत पताकाधारी दूत यह पूछने के लिये भेजा कि आक्रमणकारी ने ससैन्य इस पार आने की धृष्टता क्यों की ? पर अभी उनके सन्देश का उत्तर भी न आ पाया था, कि अज्ञात दिशा से, नाफ्ताधारियों के प्रबल बाणों का प्रहार हुआ और उसकी विचित्र सनसनाहट से महाराज और उनके सैनिक अवाक् रह गये। सभी के लिये यह प्राचीन किन्तु अब नूतन युद्ध-कला की अज्ञात वस्तु थी। इस प्रकार अन्तरिक्ष से सहस्रों बाणों की बौछार ने आकर महाराज, उनके गज, पार्श्ववर्त्ती सैनिकों और महावत को आश्चर्य और विस्मय से व्याकुल कर दिया। हाथी इस अप्रत्याशित सनसनाहट और प्रहार से बिदक गया। महावत ने उसको नियंत्रण में रखने का प्रयत्न किया, पर एक और बौछार ने महावत को हाथी से नीचे ला गिराया और हाथी भड़क कर नदी में घुस पड़ा। उसकी गद्दी में प्रज्ज्वलित-नाफ्ता के प्रहार से आग लग चुकी थी। इसलिये, महाराज का हौदे पर बैठे रहना एक अरक्षित स्थिति थी। ऐसी अवस्था में भी महाराज ने हाथी को एक बार नदी में से किनारे पर लाने का प्रयत्न किया और वह इसमें सफल भी हो गये। अब महाराज हौदे से आगे बढ़ कर स्वयं महावत

के स्थान पर बैठ गये, इसलिये जब तीरन्दाजों का तीसरा आक्रमण हुआ तो कई तीरों से उनका शरीर छिद गया और उन्होंने ऊँचाई पर बैठे रह कर शत्रु का सहज लक्ष्य बनने की अपेक्षा नीचे उतर कर लड़ना श्रेयस्कर समझा।

इस बीच नाफ्ता के प्रहार से महाराज की सेना का वह प्रमुख अश्वारोही दल, जो हाथी के आस-पास था, छिन्न-भिन्न हो गया, अतः महाराज, नदी से निकल अस्थायी पुल से इस तट पर पहुँची हुई शत्रु-सेना से घिर गये। उन्होंने अपना खड्ग सँभाला और बात की बात में पार्श्ववर्त्ती अरबों को यमलोक भेज दिया। यद्यपि महाराज का शरीर नाफ्ता के प्रहार से घायल हो चुका था और उन्हें चक्कर आ रहा था, क्योंकि हाथी को लक्ष्य करके चलाये गये तीर विष में बुझे थे और उनका प्रभाव घातक था, फिर भी उन्होंने अतुल वीरता के साथ अपने घेरनेवालों को तलवार से काट-काट कर ढेर कर दिया। महाराज का खड्ग-प्रहार इतना प्रबल था कि उन्हें घेरनेवालों में जो बच गये वे प्राण लेकर भागे। हाथी के भागने और फिर महाराज के घिर जाने और अन्तरिक्ष से बाणों-जैसे बेढंगे और गुप्त आक्रमण से आर्य-सेना के बहुत से सैनिक भाग खड़े हुए थे; पर अब महाराज का शौर्य और उनके द्वारा यवनोंको काटे जाते देख उनमें फिर साहसका संचार होगया

और वे वापस उनके पास आकर एकत्रित हो गये। इस से नाफ्तावालों को, एकत्रित आर्य-दल को अपना लक्ष्य बनाने में सफलता मिली। क्योंकि वे यह जान चुके थे कि महाराज इसी दल के बीच में हैं। उन्होंने एक साथ पुनः विषैले बाणों का ऐसा प्रबल प्रहार किया जिस से एक जगह एकत्रित समस्त आर्य सैनिक, जिसमें दुर्भाग्यवश महाराज भी थे, धराशायी हो गये। भूमि पर गिर कर भी महाराज मृत नहीं हुए थे, पर इस अवसर का उपयोग आगे बढ़ती हुई शत्रु-सेना ने चतुरतापूर्वक किया। उन्होंने अन्य आर्य सैनिकों को महाराज के निकट पहुँचने से रोका; पर इसी बीच महाराज का एक प्रमुख सेनानायक अपना घोड़ा प्रबल वेग से दौड़ाते हुए, अरबों की पंक्ति तोड़कर, धराशायी आर्य सैनिक-दल में पहुँच गया। महाराज को उठाकर उसने घोड़े पर चढ़ा दिया और वह उन्हें अर्द्ध-मूर्च्छित-सा देख स्वयं भी उनके पीछे बैठ कर घोड़े को निकाल ले जाने का प्रयत्न करने लगा। उसने बायें हाथ से महाराज को सँभाले रह कर केवल दाहिने हाथ से, भाले-द्वारा कितने ही अरब-सैनिकों को धराशायी कर दिया। पर अभी वह शत्रु-पंक्ति से बाहर निकला ही था कि उस पर पार्श्ववर्त्ती वृक्षों से एक साथ सैकड़ों तीरों की वर्षा होने लगी। उस वीर क्षत्रिय बलवीरराय का सारा बाहुबल और पराक्रम व्यर्थ गया। इस प्रहार

न तो उसका घोड़ा आगे बढ़ सका और न वह तथा महाराज ही घोड़े की पीठ पर टिक सके। बलवीरराय प्रबल बाण-प्रहार से तत्क्षण काम आ गया। इस बार महाराज के धराशायी होते ही एक अरब-सैनिक तीव्र गति से उनकी ओर बढ़ा। महाराज अब पूर्णतः मूर्च्छित हो चुके थे इसलिये, उनमें प्रतिरोध करने की न शक्ति रही थी न चेतना। म्लेच्छ ने खड्ग-द्वारा महाराज का मस्तक धड़ से अलग कर दिया और उसे एक वस्त्र में लपेट कर वह अपने स्वामी मुहम्मद-बिन-कासिम को भेंट करने के लिये दौड़ गया।

महाराज के मारे जाने का समाचार वन्याग्नि की तरह चारों ओर फैल गया। आर्य सेना का रहा-सहा साहस भी टूट गया। जो आर्य-सेना यत्र-तत्र शत्रुओं से लड़ भी रही थी उसके भी पाँव उखड़ गये और भगदड़ मच गई। इस समय, सेना में न तो प्रधान सेनापति राजकुमार जयसिंह थे और न मंत्रिवर शशिकर, इसलिये कोई भी कुशल सैन्य-संचालक इन भागते हुए सैनिकों को युद्ध-क्षेत्र में रोकने में समर्थ न हुआ। और सच बात तो यह है, कि तीरों की बौछार से अनभ्यस्त आर्य सेना इस प्रकार डर गई जैसे कोई निकट आये सर्प से भय खा जाता है। महाभारत-काल में जिस जाति ने बाण-विद्या का कल्पनातीत विकास किया था, आज उसी के वंशज अपनी विद्या और कला से इतने

शून्य हो गये थे कि उसका विकृत रूप भी अपने यहाँ न टिका सके। इसके विपरीत, सुदूरवर्ती गुणग्राही यवनों ने हमारी ही विद्या को सीख कर उसके द्वारा हमें पराजित करने में सफलता प्राप्त कर ली। यह सब भारत के दुर्भाग्य, आर्य जाति की आत्म-तुष्टि की भावना और बाह्य जगत् की गति-विधि से अज्ञान के कारण ही हुआ, अन्यथा जिस धनुर्धारी अर्जुन के गाण्डीव की टंकार से आकाश-पाताल और पृथ्वी में प्रकम्प हो उठता था और अक्षौहिणी की अक्षौहिणी चतुरंगिनी सेनाओं के प्राणों के लाले पड़ जाते थे, उन्हीं के वंशज, अब सामान्य तीर-कमान के प्रहार के भय से युद्धभूमि छोड़ कर भाग रहे थे। कोई इस बात की कल्पना भी न कर सकता था, कि शताब्दियों से सुरक्षित भारत की स्वाधीनता में इतनी सरलता के साथ बाधा उत्पन्न की जा सकेगी और उसके एक श्रेष्ठ योद्धा नृपति का प्राण इतनी जल्दी यवनों की भेंट हो सकेगा। आर्य-सैनिकों के मन में महाराज दाहिरराय के प्राणान्त से ऐसा आतंक छा गया कि अब वे तलवार और ढाल की लड़ाई को व्यर्थ समझ रणक्षेत्र से भाग खड़े हुए। तीर-कमान के गुप्त प्रहार से इतनी अधिक सफलता शत्रु को मिल सकती है, इसकी किसी को आशंका न थी।

उधर महाराजकुमार जयसिंह राज्यसीमामें ही कहीं आखेट

को गये थे, और इधर उनके पिता इस प्रकार सहज ही शत्रु का आखेट बन गये। मंत्रिवर शशिकर का बौद्धिक कौशल प्रसिद्ध था; पर इस समय वह भी सुदूर ब्राह्मणाबाद चले गये थे। यद्यपि इन दोनों को तुरन्त लौट आने के सन्देश लेकर अश्वारोही और साँड़िनी-सवार भेज दिये गये थे; किन्तु इस समय, जब कि शत्रु-सेना के गुप्त तीर-प्रहार से आर्य सेना के पाँव उखड़ रहे थे, उसे रोकने के लिये इन दो में से कोई भी उपस्थित न था। व्यूह-रचनापूर्वक युद्ध करने का रणकौशल भी उस समय आर्य सेना से लुप्त हो चुका था, इसलिये सीधे आमने-सामने की लड़ाई में जहाँ खड्ग-द्वारा बाहुबल और द्वन्द्व-युद्ध का नैपुण्य दिखाने का अवसर ही न हो, और दूर ही से अज्ञात तीरों की बौछार सैनिकों को धराशायी कर दे, ऐसे युद्ध-क्षेत्र में टिकना जान-बूझकर आत्मघात करने के सदृश था। इसीलिये, आर्य सैनिक बल-पौरुष और पराक्रम रखते हुए भी पलायनोन्मुख हो गये। इस प्रकार छिन्न-भिन्न होकर भागनेवाले सैनिकों में कुछ तो वन की ओर भाग गये, कुछ निकटवर्ती अम्भीर नगर की दिशा में भागे और कुछ अधिक कर्त्तव्य-परायण दुर्ग-द्वार की ओर।

इस भगदड़ और कोलाहल के बीच अरब-सेनापति मुहम्मद-बिन-क़ासिम ने अपने कर्त्तव्य का निश्चय तुरन्त कर लिया। उसे महाराज का मस्तक मिल चुका था, इसलिये आधी विजय

तो पहले ही मिल चुकी थी। इस अर्द्ध-विजय के उन्माद से उसका साहस और भी बढ़ गया। उसने तत्काल अपनी सेना का पुनर्विभाजन किया और उनके विभिन्न दलों को नवीन व्यूहात्मक महत्त्व के स्थलों पर नियुक्त कर दिया और प्रमुख अश्वारोही सैन्य-दल के साथ अब वह दुर्ग की ओर बढ़ा चला।

परन्तु इसी बीच, स्वर्गीय महाराज दाहिरराय के द्वितीय राजकुमार फूफी, राजोर के दुर्ग से रावर आ पहुँचे थे। जब उन्हें ज्ञात हो गया कि महाराज यवनों के साथ लड़ते हुए वीर-गति को प्राप्त हो चुके हैं, तो वे तुरन्त अपने चुने हुए अश्वारोही सैनिकों को साथ ले रणभूमि की ओर बढ़े। इस बीच युद्ध का समाचार दूसरे ठिकानों तक पहुँच चुका था इसलिये अखम लोहाना, भीटी ठाकुरों और प्रमुख जाट ठिकानेदारों के चुने हुए सैनिक दुर्ग-रक्षा के लिये आ पहुँचे थे। इन दलों में से कुछ सैनिक शत्रु को दुर्ग के निकट आने से रोकने के लिये राजकुमार फूफी के साथ आगे बढ़े और कुछ दुर्ग-द्वार पर टिके रहे। मार्ग में ही मुहम्मद-बिन-क़ासिम की सेना से इस क्षत्रिय-दलका संघर्ष हुआ। यह युद्ध तलवार और भालों का था, इसलिये इसमें आर्य सैनिक टिके ही नहीं, वरन् शत्रुओं को भली भाँति छकाया। मुहम्मद-बिन-क़ासिम ने पीछे की सुरक्षित सेना को आगे भेजना जारी रखा और

नाफ़्ता-धारियों का दल आस-पास ऊँचे वृक्ष या छिपने के झुरमुट न होने के कारण उपयोग में न आ सका। इस बीच मुहम्मद-बिन-क़ासिम ने नई युक्ति सोच ली। उसने अपनी सेना का अधिकांश भाग इस कौशल से पीछे रखा कि आगे बढ़ती आर्य सेना को उसके न्यूनतम सैनिक घनीभूत होकर आगे बढ़ने से रोक सकें। इससे तीरन्दाजों को उन पर पार्श्व भाग से प्रहार करने का अवसर मिल गया, यद्यपि इससे शत्रु के भी बहुत से सैनिक आर्य सैनिकों ही की भाँति धराशायी हो गये, क्योंकि मिली-जुली और गुत्थम-गुत्थ लड़ाई में ठीक नाफ़्ता-प्रहार के समय उनका पीछे हट कर बच जाना सम्भव न था। इस प्रकार मुहम्मद-बिन-क़ासिम ने अपनी सेना को अधिक क्षतिग्रस्त करके भी आर्य सेना के विनाश की व्यवस्था कर ली और यह अन्ततः उसमें सफल हो गया।

× × ×

उधर दुर्ग के भीतर, महाराज के वीर-गति प्राप्त हो जाने के समाचार से शोक-सागर तो अवश्य उमड़ पड़ा, पर क्षत्राणियों के धैर्य रूपी बाँध ने उसे रोक लिया। सब समझ गये थे कि इस समय घबराने और पछताने से कुछ न होगा, वरन् स्थिर बुद्धि होकर ही कर्त्तव्य का निश्चय करना होगा। महारानी लाड़ीबाई ने राज-परिवार की समस्त महिलाओं, सैनिक अधि-

कारियों और योद्धाओं की पत्नियों एवं सेविकाओं तथा दासियों को बुला कर एक सभा की। लाड़ीबाई को किसी भी प्रकार यह विश्वास नहीं होता था कि महाराज युद्ध में काम आ गये हैं। उनका निश्चय था कि इसके बारे में जब तक वह अपनी श्रद्धेया और महामाननीया महामाया का निर्णय न जान लें तब तक इस बात पर अन्तिम रूप में विश्वास नहीं कर सकतीं। महामाया को वन से बुला लाने और गुप्त मार्ग से दुर्ग में प्रवेश कराने का आदेश वह अपने भृत्यवर्ग को दे चुकी थीं। इस बीच उन्होंने महिलाओं की एकत्रित सभा को सम्बोधन करते हुए कहा :—

"मेरी प्यारी माताओ, बहनो और पुत्रियो,

"आप सब ने जो समाचार सुना है, मुझे उस पर विश्वास नहीं होता। मेरा दृढ़ मत है कि महाराज यवनों-द्वारा मारे नहीं जा सकते। अवश्य ही वे मंत्रिवर की अनुपस्थिति में पार्श्ववर्त्ती ठिकानों से सैनिक सहायता प्राप्त करने गये होंगे। आप सब साहस न छोड़ें। वे शीघ्र ही दल-बल सहित आ पहुँचेंगे और यवनों का पूर्ण रूप से विनाश कर देंगे। हमारे ब्राह्मणगण जो मस्तकहीन शव समर-भूमि से उठा कर सुरक्षित स्थान को ले गये हैं, वह महाराज का नहीं है। अन्य कितने ही आर्य सैनिक शरीर से महाराज के आकार-प्रकार के हैं। हमें शोक और भय से बचना चाहिये, क्षत्राणियों का

यही धर्म है। महाराज, गोभक्षकों का नाश किये बिना चिर-निद्रा नहीं लेसकते। फिर भी हमें, देहनाश-द्वारा आत्माकी रक्षा करने की प्राचीन परिपाटी की तैयारी कर लेनी चाहिये। यदि महाराज के लौटने से पहले ही शत्रु दुर्ग में प्रविष्ट हो गये तो हमें उस अवसर के लिये पहले ही से चिता प्रज्ज्वलित कर रखनी चाहिये और यवनों-द्वारा शरीर का स्पर्श होने के पूर्व ही उस चिता में कूद-कूद कर देह-नाश-द्वारा आत्मिक सद्-गति प्राप्त करनी चाहिये। यही हमारी महामाया की शिक्षा है और यही है हमारा परम्परागत धर्म।''[१]

दुर्ग में इस प्रकार शत्रु के घुस आने की आशंका जब चूड़ान्त को पहुँच गई तो सहसा ब्राह्मणाबाद से मंत्रिवर शशिकर के आगमन के समाचार से करुणा में वीर रस का संचार हो उठा। सब के हृदय एक बार फिर आशा से भर गये। मुख-मण्डलसे शोक-संताप और भयकी भावना दूर-सी हो गई और बिखरी हुई सारी आर्य शक्तियाँ एक बार फिर एकत्रित-सी हो गईं। मंत्रिवर के आने के थोड़े ही समय बाद महाराजकुमार जयसिंह के आजाने से उस भाव में और भी अभिवृद्धि हुई। मंत्रिवर ने पहले सब व्यवस्थाओं का निरीक्षण किया। फिर महारानी लाड़ीबाई और महाराजकुमार जय-सिंह तथा प्रमुख राजपुरुषों की एक संयुक्त सभा में भाषण

---

१. 'चचनामा' अंग्रेजी अनुवाद।

देते हुए उन्होंने कहा:—

"राजमहिषी, महाराजकुमार तथा समस्त राजपुरुषगण,'

"जो कुछ हो चुका है, उसे हम मेट नहीं सकते, किन्तु भविष्य हमारे हाथ में है। महाराज की आकस्मिक वीर-गति के समाचार से सेना में शोक, निराशा और किंकर्तव्य-विमूढ़ता की भावना भर गई है। प्रजा में आतंक छा गया है। शत्रु हमारी अपेक्षा इस अर्थ में तो प्रबलतर है ही, कि उसके पास ऐसा अस्त्र है जो हमारे लिये प्राचीन होते हुए भी अब नवीन है। ऐसी दशा में, बुद्धिमानी इसी में है, कि हम पुनः युद्ध में कूदने के बदले आत्मरक्षा का प्रयत्न करें और ऐसा आन्तरिक संगठन करलें जिससे सारा भारतवर्ष इस नवागन्तुक संकट से त्राण पा सके। यह निश्चय है, कि शत्रु-दल अब दुर्ग की ओर बढ़ रहा है, अतः यह अनिवार्य है कि उसके दुर्ग-द्वार तक आने के पहले ही हम राज-परिवार के सभी स्त्री-बच्चों को छोटी-सी चुनी हुई सेना की रक्षा में गुफा-मार्ग से सुरक्षित स्थान को पहुँचा दें। इस कार्य में अब तनिक भी विलम्ब नहीं होना चाहिये। जोधरायजी, मँजे हुये राजपुरुष और योद्धा हैं। यह काम आप को ही सौंपा जाता है। यद्यपि, गुफा-द्वार से जाने से महिलाओं और शिशुओं को कष्ट होगा, पर दुर्ग के पृष्ठ-द्वार से भेजना सुरक्षित नहीं है, क्योंकि शत्रु के सैनिक दुर्ग घेर चुके हैं

और गुप्तचर सभी स्थानों में भर गये हैं। गुफा-द्वार से वन में पहुँच कर वीरवर जोधराय सबको सुरक्षित रूप में ब्राह्मणाबाद ले जायँगे। महाराजकुमार को भी साथ जाना होगा; परन्तु ब्राह्मणाबाद पहुँच कर वह सैनिकों के साथ अगला आदेश प्राप्त करने के लिये तैयार रहें। मैं जानता हूँ कि वे हम सबका, अपने सैन्य-संचालन के कार्य से वंचित हो कर दूर जाना क्षात्रधर्म के विरुद्ध समझेंगे, अतः इसे अस्वीकार्य मानेंगे, परन्तु मुझे तो उनसे और भी अधिक महत्त्वपूर्ण काम लेने हैं, अतः मुझे आशा है कि स्वर्गगत महाराज के स्थान पर अब वह मेरे आदेश का पालन अन्ध-श्रद्धापूर्वक करेंगे। वन से ब्राह्मणाबाद की ओर केवल पगडंडी के मार्ग से जाना होगा, क्योंकि राजमार्ग पर शत्रु के सैनिक और गुप्तचर नियुक्त हैं।"

मंत्रिवर शशिकर का परामर्श महाराज दाहिरराय भी अस्वीकार नहीं करते थे, अतः राजमहिषी लाड़ीबाई और महाराजकुमार जयसिंह तो उसे स्वप्न में भी नहीं टाल सकते थे। क्षण भर में सब व्यवस्था हो गई। राजमहिषी लाड़ीबाई, महाराजकुमार जयसिंह, दोनों महाराजकुमारियाँ सूर्यदेवी और परिमलदेवी तथा राजकुटुम्ब की अन्य समस्त महिलाएँ, अपने बच्चों-शिशुओं, सहेलियों और प्रमुख सेविकाओं सहित छोटी-सी सैनिक टोली के संरक्षण में, गुफा-मार्ग से ब्राह्मणाबाद के लिये प्रस्थान कर गईं।

: २ :

दुर्ग-प्रवेश

पार्श्व-भाग के प्रबल तीर-प्रहार से आर्य-सेना के पाँव उखड़ चुके थे, इसलिये, अरब-सेना को दुर्ग-द्वार की ओर बढ़ने में आसानी हो गई। मुहम्मद-बिन-क़ासिम इस थोड़ी अवस्था में ही युद्ध-कौशल में अतिशय पारंगत था और कुछ स्वाभाविक प्रवृत्ति के कारण व्यूहात्मक कार्य-कलाप में विशेष निपुण हो चुका था। उसने आर्य-सेना के खिसकते ही फिर अपनी सेनाओं का पुनर्विभाजन किया और योग्य सैन्याधि-

कारियों को यथास्थान नियुक्त कर दुर्ग के चारों ओर सैनिक लगा दिये। इसके पश्चात् फिर चुने हुए सैनिकोंको दुर्ग-द्वार की ओर बढ़ने का आदेश देकर तथा नाफ्ता-धारियों को सुदूर पार्श्व से आगे बढ़ते हुए आवश्यकता पड़ते ही आर्य-सेना पर प्रहार करने की आज्ञा प्रदान कर, वह सैन्य-संचालन में लग गया।

इधर, मंत्रिवर के आदेश से राज-परिवार के गुफा-मार्ग से ब्राह्मणाबाद के लिए प्रस्थान कर जाने के पश्चात्, राज-परिवार की परमपूज्या महामान्या योगमाया वनस्थली से गुप्त मार्ग-द्वारा दुर्ग में आ पहुँचीं। उनके साथ महाराज की भगिनी रानीबाई भी थीं, जो इन दिनों उनके दर्शन करने के लिए उनकी वनस्थित पर्णकुटी को गई थीं। इस बीच, मंत्रिवर ने दुर्गस्थित सैनिकों में साहस का पूर्ण संचार कर दिया और उन्हें यथास्थान नियुक्त कर द्वार-रक्षा को दृढ़तर बनाने का प्रयत्न किया। बाल-ब्रह्मचारिणी महामाया उस समय वयस्का हो चुकी थीं। वह सिन्धु प्रदेश की ही नहीं, तत्कालीन भारत की परम विदुषी योगिनी थीं और धर्म एवं आचार-सम्बन्धी बातों के अतिरिक्त राजनीति में भी प्रवेश कर चुकी थीं। अवस्था चालीस के ऊपर थी, पर शरीर बालोचित चंचलता और सुकोमलता से युक्त था। उनके विचार निर्मल, पारदर्शी और बुद्धि परिपक्व तथा निर्णयमें अटल थी।

वह स्वर्गीय महाराज दाहिरराय के बाल्यकाल की परिचिता और पुरोहित-कन्या थीं। उन्होंने काशी जाकर षट्शास्त्रों का अध्ययन किया था और अपने अभ्यास-द्वारा स्त्रियों को योग-विद्या की पूर्णाधिकारिणी सिद्ध कर दिया था। मंत्रिवर ऐसी विमल विभूति को राजनीतिक चपेट का आखेट नहीं बनने देना चाहते थे, अतः उन्होंने प्रस्ताव किया कि महामाया और राज-भगिनी रानीबाई एक और टोली के साथ गुफा-मार्ग से ब्राह्मणाबाद के लिये भेज दी जायँ। परन्तु महामाया किसी भी प्रकार इस प्रस्ताव से सहमत नहीं हुईं। उन्होंने कहा कि वे ऐसी कायरता नहीं दिखा सकतीं। जिस प्रकार वे महाराज दाहिरराय को जीवन भर अपने सत्परामर्श देती रही हैं, तथा उनके परिवार का अङ्ग बन कर सुख-दुख झेलती रही हैं, वैसे ही, इस संकट-कालमें भी करेंगी। राजकुल के सभी आबाल-वृद्ध-वनिता इसी कारण इन महामान्या के सामने मस्तक झुकाते थे।

जिस समय मन्त्रिवर शशिकर समस्त सैनिक सुव्यवस्था करके महामाया के निकट आये और उन्होंने उनसे उस दुर्ग से ब्राह्मणाबाद चली जाने का प्रस्ताव किया, उस समय, उनके मन में और भी अनेक संकल्प उठ रहे थे। महामाया उनके मनोभाव ताड़ गईं। उन्होंने अपने और राजभगिनी के ब्राह्मणाबाद भेजी जाने की बात का खण्डन करने के बाद

मन्त्रिवर से पूछा कि उनके हृदय में यह कैसा झंझावात उठ रहा है जिसे उन-जैसा दृढ़ पुरुष भी छिपाने में असमर्थ है। इस पर मन्त्रिवर योगमाया को अन्यत्र लिवा ले गये, क्योंकि वह बात वे संसार में और किसी से नहीं बता सकते थे। मन्त्रिवर ने महामाया को अपनी वह सारी भावी योजना आदि से अन्त तक सुना दी, जिसमें, नाटक के पात्र-पात्रियों की तरह सबका अपना-अपना अभिनय था। महामाया को भी इस महानाटक में एक अभिनेत्री बनाया गया था।

× × ×

महाराज दाहिरराय के मारे जाने और अरब-सेना द्वारा रावर दुर्ग घिर जाने का समाचार जब अन्य पार्श्ववर्त्ती राजाओं तथा राजभगिनी रानीबाई की ससुरालवालों को मिला और यह भी पता लग गया कि राजमार्ग शत्रु-सेना-द्वारा अवरुद्ध कर लिया गया है, तो उन्होंने वन्य प्रदेश में होते हुए पगडंडियों-द्वारा रावर दुर्ग को सहायता पहुँचाने की व्यवस्था की। इस कार्य में स्वाभाविकतया विलम्ब हो गया, क्योंकि उन लोगों को बड़वाह की ओर से चक्कर काटते हुए रावर पहुँचना था।

पर मुहम्मद-बिन-क़ासिम, इस दिशा में भी असावधान नहीं था। उसने युद्ध को अब केवल दुर्ग-द्वार पर घनीभूत करके, अन्य सैनिक दलों को आदेश किया, कि वे दुहरी

पंक्तियों का लम्बा ताँता बनाकर दुर्ग को घेर लें—एक पंक्ति का मुँह दुर्ग के प्राचीर की ओर हो और दूसरी का विपरीत दिशा में, जिससे उस ओर से आनेवालों का निरीक्षण सरलतापूर्वक किया जा सके। यह व्यवस्था हो चुकने के पश्चात् मुहम्मद-बिन-कासिम ने अपने बहादुर सैनिकों को सम्बोधन करके कहा—

"अब जैसे भी हो, हमें किले के अन्दर दाखिल हो जाना है!"

× × ×

उधर गढ़ के भीतर राज-परिवार के प्रमुख सदस्यों के ब्राह्मणाबाद चले जाने के पश्चात्, उनके निकट-दूर के सम्बन्धियों, शूर-सामन्तों और प्रमुख सैनिक एवं असैनिक अधिकारियों की स्त्रियाँ सहस्रों की संख्या में रह गई थीं। जब यह पता चला, कि अरब, दुर्ग की भली भाँति घेर लेने के बाद द्वार पर लड़ रहे हैं और अब भीतर प्रवेश करना ही चाहते हैं, तो महामाया ने उन समस्त स्त्रियों को अन्तःपुर के विशाल कक्ष में एकत्रित करके भाषण दिया:—

"मेरी प्राणाधिक प्रिय बहनो!

"हमारे आर्य-धर्म में रक्त की विशुद्धता को सर्वाधिक महत्त्व दिया गया है। इसीलिये, रक्त-सम्बन्ध स्थापित करने में स्वधर्मानुयायियों तक में वर्ण, वर्ग और पात्रापात्र

का विचार किया जाता है। आर्य-धर्म की रक्षा अभी तक मुख्य रूप से स्त्रियों ने की है—उसकी परम्परा और विधियों का पालन अब तक उन्हीं के हाथ में रहा है। उन्होंने आत्माहुति देकर भी अपने धर्म, अपनी संस्कृति और अपनी परम्परा की रक्षा की है। ऐसी अवस्था में हम, अरबों के हाथ में पड़ कर अपना मूल धर्म नष्ट करने की अपेक्षा, इस नश्वर शरीर को भस्म कर दें तो हमारी आत्माएं सद्गति प्राप्त कर सकती हैं। इस शरीर को, अरबों के हाथों में पड़ कर भ्रष्ट होने की अपेक्षा, स्वयं राख करके, अपने को और अपनी जाति को गौरवान्वित करना कहीं अच्छा है। इतिहास हमारा गुण गायेगा और हमारे वंशज हमारी इन विमल कृतियों को पढ़कर गर्व से मस्तक उन्नत करेंगे। यह जो विशाल चिता धू-धू करके जल रही है, इसमें हम शीतल जलाशय समझ कर इंगित होते ही कूद पड़ें और इस प्रकार शारीरिक दाह के द्वारा आत्मिक शीतलता प्राप्त करें। अरबों के हाथों में पड़ कर और उनके देश में ले जाई जाकर गुलामों के हाथ कौड़ियों के मोल बिकने की अपेक्षा यह आत्मिक सद्गति सहस्रगुनी उत्तम है। अपनी उत्तमता, शुद्धता और विशेषता नष्ट कर देने के बाद नारी-जीवन में कुछ नहीं रह जाता? अतः जिस समय अरब, दुर्ग-द्वार भग्न कर भीतर प्रवेश करें, तो उन्हें कम से कम स्त्री के रूप में तो गर्म राख ही मिलनी

चाहिये। पुरुषवृन्द तो लड़ते-लड़ते प्राणत्यागकर स्वर्गारोहण करेगा; पर महिलाएँ, अपने कोमल शरीर का मोह त्याग दें—इस पंच-भूतात्मक नश्वर शरीर को पंचभूतों में ही मिला देने की अविलम्ब तैयारी कर लें। कहीं ऐसा न हो कि हममें से कुछ बहनें प्राणों के लोभ से चिता-प्रवेश करने में हिचकिचा जायँ और इस तरह अरबों के हाथ पड़कर दुर्गति भोगने पर बाध्य की जायँ। आर्य-महिलाओं को शरीर का कोई मोह नहीं होना चाहिए-जो आत्मा की अमरता को जानता है और उसके शुद्ध, बुद्ध,मुक्त स्वभावसे परिचित है, उसे, श्री मद्भगवद्गीता के उपदेशानुसार, इस शरीर को जीर्णवस्त्रवत् त्याग कर नया परिधान—नया चोला धारण करने के लिए तैयार हो जाना चाहिये। आत्मा की श्रेष्ठता तभी स्थिर रहती है जब उसके आदेशानुसार चला जाय। इस शरीर को त्याग कर हम निश्चय ही अपनी आत्मा को श्रेष्ठतर योनि में पहुँचा देंगी और सभी प्रकार की भ्रष्टता दुःख-द्वन्द्वों से छुटकारा पा जायँगी। समय बहुत कम रह गया है। लम्बे उपदेश का अवसर भी नहीं है। आप में से अधिकांश महिलाएँ क्षत्राणियाँ हैं—वे स्वधर्म-पालन से भली भांति परिचिता हैं, इसलिये, उनके लिये अधिक कुछ कहने की आवश्यकता भी नहीं है।"

महामाया के बाद, महाराज की भगिनी रानीबाई ने भी

एक ओजपूर्ण भाषण देते हुए कहा :—

"हम गोभक्षकों द्वारा अपने शरीर का स्पर्श कदापि न होने देंगी ! अपवित्र जीवन व्यतीत करने के लिए जीवित रहने की अपेक्षा, इस प्राण को शरीर से पृथक् कर देना लाख गुना उत्तम है । शत्रु-सेना की जैसी गति-विधि है उसे देखते हुए, कोई भी युद्ध-योग्य पुरुष इस विकराल युद्ध में बचता नहीं दिखाई देता। जिस युद्ध में बाहुबल, खड्ग-कौशल और भालों का नैपुण्य कुछ भी काम न दे और मनुष्य अपने पौरुष का एक अणु प्रदर्शित किये बिना ही दूर के अस्त्र-प्रहार से धराशायी कर दिया जाय, वह युद्ध नहीं, महामारी है । म्लेच्छों के इस, गुप्त प्रहार से ही मेरे भाई की अशोभनीय मृत्यु हुई है। वे समर-भूमि में शत्रु से आमने-सामने लड़कर उन्हें अपना बाहुबल दिखा कर, वीर-गति को प्राप्त होते, तो किसी को ऐसा दुःख और पश्चात्ताप न होता। इसमें दोष हमारा ही है, क्योंकि हम अपने राज्य में सुखपूर्वक अन्तर्मुखी होकर बैठे रहे—शासन-कार्य, बिना बहिर्मुखी हुए नहीं चल सकता। उसे बाहरी जगत की ओर दृष्टि डालनी चाहिये थी— विकसित युद्ध-साधनों और कलाओं का ज्ञान रखना चाहिये था। हमारी ही कला-विद्याएँ दूसरे देशों में विकसित हो रही हैं और हम चुपचाप बैठे सुख के नये-नये साधनों का आविष्कार करने में लगे

हैं। इसमें हमारे पुरुष-वर्ग का दोष अवश्य है, पर उन्हें वैसा बनाने का दायित्व हम पर है। हम माया-मोह और सांसारिक स्वार्थ में पड़ कर, अपना सामूहिक हित और राष्ट्र-धर्म की भावना भूल गईं, इसी कारण, इस स्वर्ण-भूमि को आज म्लेच्छाक्रान्त होना पड़ा। अस्तु, अब हमें अविलम्ब आत्मबलि के लिये प्रस्तुत हो जाना चाहिये। नारी-पुरुष की अर्द्धांगिनी है, अतः उसकी भूलों का दण्ड इसे भी भोगना ही पड़ेगा। अर्द्धांग नष्ट हो रहा है—फिर हमें शेषार्द्ध के रूप में जीवित रहने का अधिकार भी नहीं है—हम अपने सर्वाधिक प्रिय सतीत्व को हाथ से न जाने देंगे—इस क्षण-भंगुर शरीर के मोह में पड़ कर आत्मिक निधि को न गँवायेंगे।"

सभी प्रमुख महिलाओं ने इन दोनों भाषणों का समर्थन किया और वे षोडश शृंगार कर, प्रज्ज्वलित चिता के चारों ओर खड़ी हो यह गीत गाने लगीं :—

जौहर-गान

आओ बहनो, सब मिल गायें, अपना अन्तिम गान,
प्राण निछावर करके रख लें, नारि-जाति की आन।
आज धर्म पर संकट आया,
काला बादल चहुँदिसि छाया;

वीर बाँकुरे जूझ मरे सब,
प्रबल शत्रु ने कपट रचाया,
अग्नि-शिखा प्रज्ज्वलित चिता की, बने स्वर्ग सोपान,
प्राण निछावर करके रख लें नारि जाति की आन।
वीर कर गये शोणित-तर्पण,
हम करदें निज देह समर्पण,
ढेर राख का देख शत्रु, सब,
हाथ मींच रह जायें तत्क्षण,
सती नारियाँ जौहर खेलें, विपद पड़े जब आन,
आओ बहनो सब मिल गायें, अपना अन्तिम गान।

उधर मन्त्रिवर शशिकर ने सभी सूर-सामन्तों से परामर्श कर, दुर्ग के भीतर रहनेवाले समस्त पुरुषवर्ग की, जिनमें सैनिक योद्धाओं से राजनीतिक अधिकारियों और ऊँचे से लेकर निम्नतम श्रेणी के भृत्य तक सम्मिलित थे, एक विशाल सभा खुले आकाश के नीचे लायी और उसको सम्बोधन कर उन्होंने कहा:—

"सिन्धुराज के रक्षक वीरो,

"मैं आप से अपने स्वर्गवासी महाराज के नाम पर कहता हूँ, कि आप आज एक व्रत ले लें। वह व्रत यह होगा, कि हम में से प्रत्येक योद्धा जब तक किसी न किसी म्लेच्छ का वध न कर ले, तब तक मृत्यु का आलिंगन करने से बचे।

यह सत्य है, कि शत्रु-दल बहुत प्रबल है; और उसके शस्त्रास्त्र हमारे शस्त्रास्त्रों से प्रबलतर हैं, यह भी सत्य है कि हम में से ही बहुत-से लोग स्वार्थवश शत्रु के गुप्तचर बन गये हैं और वह हमारा भेद शत्रु तक प्रतिक्षण पहुँचा रहे हैं, फिर भी मैं आर्यधर्मकी शपथ दिलाकर आपको प्रतिज्ञाबद्ध कर लेना चाहता हूँ कि अर्थ और पद के लोभ में आकर, आप अपने राष्ट्र की जड़ न खोदें, और जो ऐसा करते हैं, उनको, या तो कुचल डालें, या नग्न रूप में सबके समक्ष कर दें। आप भावी सन्तानों को यह कहने का अवसर न दें, कि उनके पूर्वजों में से ही बहुतों ने विभीषण बन कर विधर्मियों और विदेशियों को मदद दी थी और आर्य-राष्ट्रका उन्मूलन किया था। ऐसी दशा में, शत्रु के जो गुप्तचर आर्य-वंश के हों, कम से कम उन्हें अपनी मातृभूमि को अर्थ और पद के बदले नहीं बेचना चाहिये। हम में से जो भी पुरुष अपने पुरुषोचित गुणों का प्रदर्शन न कर सके, उसके लिये दूसरा मार्ग यह है कि वह महिलाओं के साथ चिता में भस्म हो जाय, पर शत्रु के हाथों पड़ कर उसकी सेवा करने के लिये बाध्य न हो। इस प्रकार, वह शत्रु की संवृद्धि करने के महा-पातक से बच जायगा।............"

मंत्रिवर शशिकर का भाषण अभी समाप्त भी नहीं हुआ था कि सहसा दुर्ग-द्वार पर प्रबल आघात हुआ। भीतर

एकत्रित सभी क्षत्रिय वीर सजग होकर पंक्तिबद्ध हो गये और सैनिक अधिकारियों ने इस प्रकार की व्यूहात्मक व्यवस्था कर ली कि जब तक प्रत्येक सैनिक का संहार न हो जाय, अरब सेना भीतर प्रवेश न कर सके ।

हुआ भी ऐसा ही । विशाल फाटक का लघु-द्वार शत्रु-सेना ने तोड़ लिया और उससे होकर एक-एक करके अरब सैनिक भीतर घुसने लगे । आर्य सेना के लिये एक सुअवसर था । उसने एक-एक करके शत्रु-सैनिकों का संहार आरम्भ कर दिया । इस तरह उमड़ती हुई शत्रु-सेना के बहुत से सैनिक जब काम आ गये, तो अरबों को अनुभव हुआ कि इस प्रकार दुर्ग में प्रवेश करना मृत्यु-मुख में कूदने के समान है । अतः जब तक विशाल फाटक खुल न जाय या उसे तोड़ न डाला जाय, और अरब-सेना सामूहिक रूपमें एक साथ भीतर न घुस सके, तब तक भीतरी क्षत्रिय-सेना को वह वश में न कर सकेंगे ।

अरबों ने अब सारी शक्ति दुर्ग का फाटक तोड़ने में लगा दी और कोई आधे घण्टे के प्रबल परिश्रम के बाद दुर्ग का विशाल फाटक टूट गया । अरब-सेना, अब मुख्य रूप में भीतर प्रवेश करने लगी। बीचमें खड्ग और भाले चलानेवाले घुड़सवार थे और पार्श्व में कुछ पीछे नाफ्ताधारी टोली थी, क्योंकि तीरों का उपयोग कुछ दूरी से ही हो सकता था । इस

टोली को आदेश था, कि दुर्ग में प्रवेश करते ही, वह किनारे की ओर हो जाय और दूरवर्ती खड्गधारी क्षत्रियों को अपना लक्ष्य बनाये। अरबों की सुव्यवस्थित सेना ने पूर्ण कौशल से अपने दलों का उपयोग किया। नाफ्ताधारी. अश्वारोही और पदाति सैनिकों ने, अपने-अपने ढंग से यथास्थान पहुँच कर रण-कौशल प्रदर्शित करने का पूर्ण प्रयत्न किया। किन्तु इस प्रकार की लड़ाई में क्षत्रिय वीर कुछ कम न सिद्ध हुए। संख्या और शक्ति में अपेक्षाकृत न्यून होते हुए भी, उन्होंने खड्ग और भालों से युद्ध करनेवाले अश्वारोही और पदाति अरब सैनिकों को मात कर दिया। पर नाफ्ताधारियों ने धीरे-धीरे अपने सैनिकों के सहारे आगे बढ़कर अपने लिये समुचित स्थान चुन लिये। वह दुर्ग की चारदीवारी की छतों पर चढ़ गये और वहीं से तीरों की बौछार से आर्य-सेना का सामूहिक संहार करने लगे। इस प्रकार,प्रबल पराक्रम दिखाने-वाले आर्य सैनिक बड़ी सरलता से सुरधाम पहुँचने लगे। फिर भी, जब तक एक भी क्षत्रिय वीर जीवित रहा, अरब-सेना न उसे हरा सकी और न वश में कर सकी।

मन्त्रिवर ने जब यह देखा कि नाफ्ताधारियों के प्रहार से आर्य सैनिक धराशायी हो रहे हैं तो वे महामाया तथा अपने चुने हुए सैनिकों, अंगरक्षकों और सेवकों के साथ गुप्त रूप से गुफा-मार्ग-द्वारा ब्राह्मणाबाद के लिये प्रस्थान कर गये।

: ३ :

अभिनव योजना

ब्राह्मणाबाद पहुँचकर मंत्रिवर शशिकर ने, सिन्धु-राज्य की रक्षा और भारत-राष्ट्र के संगठन के लिये अपनी अभिनव योजना तैयार करली। उन्होंने केवल महामाया और महाराज-कुमार को ही अपनी इस योजना का परिचय दिया। शरीर में विष प्रवेश कर जाने पर चिकित्सक सर्वप्रथम उसे शरीर से निकालने का प्रयत्न करता है और उसमें विफल होने पर विष-मारक औषधियों का प्रयोग करता है। विशाल भारत

के एक अंग में विष-प्रवेश हो चुका था, उसे फैलते क्या देरी लगती। ऐसी अवस्था में, मंत्रिवर ने पहला कार्य यह सोचा कि शेष भारत के सभी शासकों को सूचित कर संगठित कर दें और उसे अपनी सहायता के लिये तैयार कर सिन्धु-राज्य में प्रविष्ट म्लेच्छ-रूपी विष को निकाल बाहर करने का प्रयत्न करे। ब्राह्मणाबाद-दुर्ग को सुदृढ़ और अभेद्य बनाने का प्रयत्न भी उन्हें करना था।

मंत्रिवर ने भारतवर्ष के समस्त आर्य-शासकों को यह सन्देश भेजा, कि हमारी धर्मभूमि में पाप का प्रवेश हो चुका है। म्लेच्छों ने दुर्निवार गति से सिन्धु में प्रविष्ट होकर देवल तथा रावर के दुर्गों पर अधिकार कर लिया है। उन्होंने हमारी प्राचीन धनुर्विद्या में अद्भुत कौशल प्राप्त कर उसी के बल पर सफलता प्राप्त की है और हम उससे वंचित हो चुके हैं। अब यदि हमें उनसे अपनी रक्षा करनी है तो धनुर्विद्या के यत्र-तत्र बचे आचार्यों और आदिम-निवासियों से यह कला शीघ्र सीखकर इसकी सैनिक टोली संगठित कर लें, अन्यथा हमें पश्चात्ताप करना पड़ेगा और यह स्वर्ण-भूमि बुभुक्षितों का देश बन जायगी तथा इसके शासकों की बहू-बेटियों का सतीत्व और सम्मान धूलि में मिल जायगा।

यह चेतावनी-सूचक सन्देश और सैनिक सहायता की प्रार्थना अपने प्रमुख सन्देशवाहकों-द्वारा मंत्रिवर ने आर्यावर्त

के सभी शासकों को भेज दी। और महाराजकुमार को उन्होंने सिन्धुराज के सम्बन्धी कुरज-पति महाराज दारोहर-राय के पास तत्काल सैनिक सहायता प्राप्त करने के लिये भेज दिया। उनके साथ मंत्रिवर ने एक सौ अश्वारोही सैनिकों की टोली भी भेजी।

× × ×

महाराजकुमार जयसिंह जब कुरज-राजधानी में पहुँचे तो वहाँ का राग-रंग देखकर दंग रह गये। महाराजकुमार इस तरह के जीवन से अपरिचित थे, इसी कारण उनमें छल-कपट और धूर्त्तता का अभाव था। वह सीधे-सादे और भोले स्वभाव के थे। वह सभी तरह की राजोचित कला-विद्याओंसे परिचित अवश्य थे, पर व्यसनों में लिप्त नहीं हुए थे। इसके विपरीत कुरज-नरेश राजा दारोहरराय सभी व्यसनों में पूर्णतः फँस चुके थे। उनके पिता का देहान्त हुए अभी छः मास भी नहीं हुए थे, किन्तु वे व्यसनों के कारण ऐसे अन्धे बन गये थे कि उनके मरने पर राज्याधिकार प्राप्त होते ही राज्य-कोश रिक्त करने में लग गये। रावर दुर्ग के पतन का समाचार उन्हें पहले भी मिल चुका था, पर जो पितृमरण का शोक नहीं मनाता वह पड़ोसी राज्य के पतन से दुःखी या साव-धान क्यों होता। जिसने अपना जीवन-लक्ष्य, सुरा और सुन्दरी को बना लिया हो, उसकी दृष्टि में सांसारिक और

सामाजिक बन्धनों में पड़ना हेय हो जाता है। दारोहरराय के पिता अपनी पुत्री राजकुमारी जानकीबाई का विवाह-सम्बन्ध काश्मीर के महाराजकुमार से पक्का कर गये थे, पर दारोहरराय ने अपनी दुश्चरित्रता का जो उदाहरण उस अपनी सौतेली बहन के सम्मुख प्रस्तुत कर दिया, उससे वह भी, अपने ज्येष्ठ भ्राता के पथ की अनुगामिनी बन गई।

हाँ, तो सान्ध्य-बेला को जब महाराजकुमार जयसिंह कुरज पहुँचे और अपना दल-बल नगर के बाहर ही छोड़ वहाँ के राजमहल में राजा दारोहरराय से मिलने गये, तो उस समय दारोहरराय का राजसी ठाठ जमा हुआ था। सुन्दरियाँ नृत्य और संगीत से उन्हें मुग्ध कर रही थीं। मद्य की मस्ती उनके मस्तिष्क पर पहले ही से सवार थी। दारोहर-राय ने प्रकटतः महाराजकुमार जयसिंह का स्वागत बड़े प्रेम से किया और उनके ठहरने की सब सुख-सुविधा की व्यवस्था-सम्बन्धी बातें करने के बाद इधर-उधर की बहुत-सी बातें कीं। इसके पश्चात् महाराजकुमार जयसिंह ने उन्हें मंत्रिवर का सन्देश दिया, पर दारोहरराय ने उसे और अवसर के लिये टालते हुए जयसिंह से मद्यपान करने और चौपड़ खेलने का अनुरोध किया। महाराजकुमार ने कहा :—

"मैं इन दोनों ही के आनन्द से वंचित हूँ; क्योंकि जीवन भर में न तो कभी मैंने मद्य-सेवन ही किया है और न

चौपड़ ही खेली है।"

दारोहर—"हा! हा! अभी आपका जीवन ही क्या है। आप तो मुझ से भी अल्पवयस्क हैं। एक राजकुमार, यदि ऐसे पदार्थों से वंचित रहेगा तो वह कर क्या सकता है? आपने अब तक नहीं पी, तो न सही; आज ही श्रीगणेश कीजिये। हम तो सुरा, संगीत और सुन्दरियों को ही संसार की सर्वोत्कृष्ट सम्पत्ति मानते और इनका उपभोग करने में अपना जीवन सार्थक समझते हैं।"

महाराजकुमार, राजसी ठाठका यह स्वरूप देखकर मन ही मन झुँझला रहे थे। दारोहररायने उनकी झेंप ताड़ ली और उसे मिटाने का कार्य अपनी छोटी बहन जानकी बाई को सौंपा।

जानकी जयसिंह की युवावस्था, सौन्दर्य और अल्हड़पन पर पहले ही दूर बैठी मुग्ध हो रही थी और मन ही मन उसकी सराहना कर रही थी। अब भाई के द्वारा उनका परिचय प्राप्त कर वह और भी प्रोत्साहित हुई। उसने जयसिंह को अनेक प्रकार की भाव-भंगियों और अंग-संचालनों द्वारा आकर्षित करने का प्रयत्न किया और उन्हें अपने हाथों सर्वोत्कृष्ट मदिरा पिलाने का प्रयत्न करते हुए कहा—"महाराजकुमार, संसार की इस अनुपम वस्तु से आप क्यों वंचित हैं? क्या आप अपने जीवन को नीरस बनाये रखना चाहते हैं?

पर जयसिंह ने अत्यन्त विनम्रतापूर्वक वह मद्य-पात्र अपने मुँह के सामने से हटाते हुए कहा—"नहीं राजकुमारी, जब परिवार और देश संकट-ग्रस्त हो तो राग-रंग में पड़ना अनुचित ही नहीं, भीषण कर्त्तव्य-च्युति है। आप मुझे क्षमा करें। मैं इस समय राजा दारोहरराय की सेवा में और ही अभिप्राय से आया हूँ।" किन्तु सीमातिक्रमण हो जाने पर अनुरोध हठ का रूप धारण कर लेता है। जानकी ने सभी मर्यादाओं का उल्लंघन कर महाराजकुमार से कहा—"अच्छा, यहां न सही; पर एकान्त में तो आपको मेरे हाथ से मदिरा पीनी ही होगी।"

जयसिंह ने उस समय किसी प्रकार जानकीबाई से जान छुड़ाई।

दारोहर के इस राजसी ठाठ से मुक्त होकर महाराजकुमार जयसिंह अपने शिविर में गये और वहाँ भोजन करते ही उन्होंने विश्राम की तैयारी कर दी, क्योंकि एक तो वे दिन भर की यात्रा के थके थे, दूसरे एक पहर तक अनिच्छापूर्वक दारोहर के राजसी ठाठ को देखने के लिये बैठना पड़ा था। पलँग पर पड़ते ही वह निद्रादेवी की गोद में जा पहुँचे।

परन्तु जयसिंह की सद्योसुप्त आँखें सहसा कोमलांगीय-स्पर्श से खुल गईं। अर्द्धरात्रि के पश्चात् पहरे को चीर कर शयनागार में प्रविष्ट होनेवाली यह रमणी कौन है?

राजकुमार ने पास जलते क्षीण प्रकाश को तीव्रतर करके आगन्तुका का मुख-मण्डल देखा—यह और कोई नहीं राजकुमारी जानकीबाई थी।

"आप ! और इस समय ?"

"तो फिर किस समय ! मैंने कहा नहीं था, कि आपको एकान्त में मेरे हाथ की मदिरा पीनी होगी ?"

"पर मैं तो मदिरा का सेवन करता ही नहीं। आपने व्यर्थ इस समय इतना कष्ट किया।"

"तो, क्या आप सचमुच इतने भोले हैं जितना दीखते हैं ? क्या आप समझते हैं कि मैं केवल मद्य पिलाने के लिये आपके पास इस समय यहाँ आई हूँ।"

"तो और क्या अभिप्राय हो सकता है। मैं नहीं समझ सकता।"

"अच्छा, तो पहले मेरे हाथ की यह मदिरा पीजिए।" जानकी ने मद्य को बोतल से पात्र में उँडेल कर जयसिंह के ओठों के पास ले जाते हुए कहा।

"उँः ! इसमें तो घोर दुर्गन्ध है।" कह कर महाराजकुमार ने दाहिने हाथ से मद्य-पात्र को ऐसा धक्का मारा कि वह फ़र्श पर गिर कर चूर-चूर हो गया।

"क्षमा कीजिये।" महाराजकुमार ने फिर कहा—"आपका मद्यपात्र टूट गया।"

"यह पात्र टूटने का कोई दुःख नहीं है महाराजकुमार !" जानकी ने स्नेहशील कोमल स्वर में कहा—"परन्तु, यदि आपने मेरे हृदय का पात्र तोड़ दिया तो फिर वह किसी का भी प्रेम धारण न कर सकेगा !"

"हृदय का पात्र ?"

"जी हाँ," जानकी ने अपने धड़कते हुए वाम वक्ष की ओर इंगित करते हुए कहा—"यह पात्र !"

"तो आप पहेली बुझा रही हैं। मैं आपसे स्पष्ट कह देना चाहता हूँ कि मैं, आपके हृदय-पात्र के लिये अपात्र हूँ।"

"क्यों ?"

"इस कारण, कि मैं तो देश-रक्षा के लिये कमर कस चुका हूँ और अरबों-द्वारा आक्रान्त मातृभूमि को बचाने में आपके बन्धु की सहायता माँगने के एकमात्र उद्देश्य से यहाँ आया हूँ।"

"वह सहायता, आपको मेरी प्रेरणा से ही मिल सकती है; पर पहले आप मेरी बात मानिये।" राजकुमारी ने अनोखी भाव-भंगी और अंग-संचालनपूर्वक कहा।

"मैं आपसे यहाँ इस अवस्था में कोई बात नहीं करना चाहता। मैं मातृभूमि की रक्षा के लिये शपथ ग्रहण कर चुका हूँ। आप मुझे मेरे इस व्रत डिगाने की चेष्टा करेंगी तो पाप-भागी बनेंगी।"

"मैं पाप और पुण्य के पचड़े में पड़ने नहीं आई हूँ। मैं तो वास्तव में आपसे अपने भाई के एक प्रण के बारे में सहायता माँगने आई हूँ। मेरे कार्य में आप सहायता दें तो अरबों से आपका राज्य बचाने के लिये मैं सहायता दिला दूँगी।"

"आप स्पष्ट कहिये—मुझसे चाहती क्या हैं ? कैसी सहायता चाहती हैं आप ?"

"मैं सहायता नहीं सहयोग चाहती हूँ—आपसे प्रेम-भिक्षा चाहती हूँ—अब समझे आप ?"

"पर अभी-अभी तो आपने अपने भाई के प्रण की बात कह रही थीं ?"

"हाँ, कह रही थी। आपको यह ज्ञात हो जाना चाहिए कि मेरे भाई सगे नहीं, सौतेले हैं; अतः वे मेरा विवाह किसी ऐसे सामान्य सैनिक से कर देना चाहते हैं जो सदा उनके दरबार में उपस्थित रहे और उनका सहकारी सेवक बना रहे। मैं यह स्थिति स्वीकार करने को तैयार नहीं हूँ। मुझे आप-जैसा महाराजकुमार चाहिए जो स्वतन्त्र भी हो, और धीर, वीर एवं प्रेमी भी। आप जिस तरह अपने राज्य की रक्षा के लिये उत्सुक हैं, उसी प्रकार, एक अबला का उद्धार करने के लिये भी उद्यत हो जाइये। मैं चाहती हूँ, कि आप मेरे भाई से यह विचार प्रकट कर दें कि आप मुझे स्वीकार

करने को तैयार हैं। इससे वे इसी समय मेरा विवाह आपके साथ कर देंगे। विवाह हो जाने पर मेरे भाई सौतेले होने पर भी प्रसन्नतापूर्वक आपको अधिकाधिक रूप में सहायता देंगे। मैं आपके साथ ब्राह्मणाबाद चली चलूँगी। मेरे स्वर्गीय पिता ने मुझे बड़ी ही मूल्यवान् रत्न राशि दे रखी है जिसका पता मेरे भाई दारोहरराय को भी नहीं है। वह सब सम्पत्ति आपकी हो जायगी। मैं वह सब सामग्री गुप्त रूप से आपके साथ ब्राह्मणाबाद ले चलूँगी।"

"पर मैं यहां धन के लिये नहीं, जन के लिये आया हूँ राजकुमारी। विवाह का प्रश्न ऐसे प्रसंगों पर नहीं उठा करता। इस समय रावर-दुर्ग का पतन हो चुका है—ब्राह्मणा-बाद पर भी युद्ध के काले बादल छा रहे हैं। ऐसे समय में, मैं धन और रूप के लोभ में पड़कर अपने पथ से विचलित नहीं हो सकता।"

"मूर्खता की बातें न करें महाराजकुमार ! मैं आपके कार्य में साधक बनूँगी, बाधक नहीं। मैं आपको इतनी मूल्यवान रत्नराशि सौंप दूँगी जिससे विशालतम सैन्य-बल क्रय किया जा सकता है।"

"यह आपकी भूल है, राजकुमारी। खरीदा हुआ सैन्य-बल, वास्तविक शक्ति नहीं होता। जो सैनिक आर्य-संस्कृति और भारत की एकता और अखण्डता की भावना लेकर युद्ध-क्षेत्र

में उतरेगा, वह कभी पराजय का मुँह नहीं देख सकता। धन-लोभ से लड़नेवाला सैनिक भाड़े का टट्टू होता है। वह अपने प्राणों की आहुति देने में हिचकिचायेगा। धन से जन खरीदा जा सकता है; पर उसका मन नहीं। इसके अतिरिक्त हमें तो सारे देश में घूम-घूमकर अब धनुर्धारियों का संगठन करना होगा, नहीं तो, यह पवित्र भूमि म्लेच्छों का क्रीड़ा-स्थल बन जायगी। मंत्रिवर का कहना है, कि अब भारत की रक्षा धन-बल से नहीं, जन-बल के संगठन से ही हो सकती है। हमें सच्चे देशभक्त, धर्माभिमानी और विशुद्ध क्षात्र-धर्म के उपासकों की आवश्यकता है राजकुमारी! मेरा मत है, कि आपके बन्धु शुद्ध क्षात्रबल से वंचित हैं और कदाचित धर्म और देश के प्रति भी उनका कोई विशेष आकर्षण नहीं है।"

"पर मैं तो सब प्रकार की सहायता दिलाने को कह रही हूँ—पहले मेरी बात स्वीकार कीजिए।"

"क्षमा कीजिए देवी, जो वस्तु आपके और आपके भाई के पास है ही नहीं, उसे आपलोग दे कहाँ से सकते हैं। मैं मानता हूँ कि अर्थ का भी अपने स्थान पर महत्त्व होता है, पर धृष्टता के लिये पुनः क्षमाप्रार्थी हूँ, आपके मुँह से मद्य की दुर्गन्ध आ रही है। मतवाले की बात का मूल्य ही क्या?"

"ऐसा प्रतीत होता है कि आप पर ब्राह्मणाबाद के बौद्ध-भिक्षुओं का प्रभाव पड़ गया है, अन्यथा इस नवयौवनावस्था में एक महाराजकुमार के मुँह से ऐसी बातें क्या शोभा देती हैं।"

"रामकुमार की शोभा सुरा नहीं, शूरता है। जिस शौर्य का प्रदर्शन करते हुए मेरे पिता स्वर्गवासी हुए हैं, उसका मुझे गर्व है। मेरे वंश की मर्यादा शौर्य में है, भोग में नहीं।"

"तो फिर कान खोलकर सुन लीजिए महाराजकुमार, आपको मेरे भाई से ही नहीं, सिन्धु या भारत के किसी भी राजा-महाराज से विशुद्ध क्षात्रबल की सहायता न मिलने पायेगी।"

"कुछ भी हो, सारे संसार का राज्य पाकर भी मैं ऐसा प्रस्ताव न स्वीकार करूँगा जो मेरे वंश की मर्यादा, मंत्रिवर के आदेश, देश की आवश्यकता और हमारी संस्कृति के विपरीत हो। आर्य-धर्म, बिना विवाह किसी कुमारी कन्या का स्पर्श भी वर्जित बताता है।"

"आप भोले और मूर्ख हैं। अपनी जड़ता का दण्ड भोग कर रहेंगे।"

यह कह जानकी शिविरि से निराश लौट गयी। दूसरे दिन वह अपने भाई दारोहरराय के पास नहीं गई। शयन-कक्ष में

पलँग पर ही पड़ी रही। इसकी सूचना जब राजा दारोहरराय को मिली तो वह स्वयं अपनी बहन के शयन-कक्ष में पहुँचा और उसका शरीर-स्पर्श कर बोला—"तुम्हें क्या हो गया जानकी? रात को तो भली-चंगी थी।"

"जिस राजकुमार से आपने मेरा परिचय कराया था, वह तो महादुष्ट निकला। रात को मेरे इस कक्ष में घुस आया। और मुझ पर बलात्कार करने की चेष्टा करने लगा। मैंने बड़े प्रयत्न से अपनी प्रतिष्ठा बचा ली। जबतक आप उसे दण्ड न देंगे तब तक मुझे शान्ति नहीं मिल सकती।"

"दण्ड क्या, ऐसे दुष्ट को तो सहायता देने के बदले समाप्त ही कर देता, पर वह अपनी शरण में आया है, इसलिए उसे कोई प्रबल दण्ड देना धर्म के विरुद्ध होगा। इस समय तो उसे कोई सहायता न देना ही सब से बड़ा दण्ड हो जायगा।"

× × ×

रावर दुर्ग पर विधिवत् अधिकार कर लेने के पश्चात् मुहम्मद-बिन-कासिम ने वहाँ के अवशिष्ट दास-दासियों के प्रति अत्यन्त कठोर बर्ताव किया, और उन्हें विविधि यंत्रणायें देकर यह जानने में सफल हो गया कि दुर्ग में किस स्थान पर राज्यकोश छिपा कर रखा गया है। अधिकांश भृत्यवर्ग को बाध्य होकर इस्लाम की शरण ले लेनी पड़ी, क्योंकि ऐसा न करते तो उन्हें अपने प्राणों से हाथ

धोना पड़ता। वंशनाश के भय से कुछ राजपूत-सामन्तों ने भी इस्लाम मजहब स्वीकार कर लिया। इन सामन्तों में से कुछ ने दुर्ग में अपनी निजी सम्पत्ति—स्वर्ण और रत्नराशि के रूप में छिपा रखी थी। मुसलमान बन जानवाले दास-दासियों और भृत्यों ने उनका भी भेद खोल दिया और जिस धन को बचाये रखने के लिये उन्होंने मुसलमान बन जाना तक स्वीकार कर लिया था, वह भी उनके हाथ न रह सका। इस प्रकार, तीस सहस्र दास-दासियों और भृत्यों के अतिरिक्त छब्बीस राजवंशी-परिवार अपने स्त्री-बच्चों सहित मुहम्मद-बिन-क़ासिम के बन्दी बन गये।[1] जिन्होंने इस्लाम स्वीकार कर लिया, उनका धन तो ले लिया गया, किन्तु प्राण छोड़ दिये गये। जिन्होंने इस्लाम स्वीकार नहीं किया उन्हें अरब-गुलामों की तलवार के घाट उतरना पड़ा।

मुहम्मद-बिन क़ासिम ने, इस प्रकार दुर्ग का धन-जन संग्रह करके जब अपनी स्थिति पूर्णतः दृढ़ कर ली, तो वहाँ प्राप्त समस्त धन-राशि और चुनी हुई राजवंशी कन्याओं, स्त्रियों, और उनकी प्रमुख दासियों को तीव्र वेगवती साँड़िनियों पर सवार करा कर खलीफ़ा की सेवा में बगदाद भेज दिया। स्वर्ण और रत्न-राशि ले जाने के लिए, सीरियन शुतर-सवारों का अलग दल सैनिक टोली की देख-रेख में भेजा गया। इस

1. भारत का मध्यकालीन इतिहास—जार्ज इलियट।

क़ाफ़िले के साथ वस्त्र में बँधा और मसाला लगाया हुआ महाराज दाहिरराय का कटा सिर भी भेजा गया। इस धन-राशि का मूल्य इतना अधिक था, कि जिसकी तुलना तत्कालीन जगत् का कोई बड़े-से-बड़ा राज्यकोश भी नहीं कर सकता था।

जिस समय यह विपुल धन-राशि और राजवंशीय कन्याएँ, खलीफ़ा वली की सेवा में बगदाद पहुँचीं तो उन्हें देख कर उसकी प्रसन्नता की कोई सीमा न रही। मज़हब के प्रचार के साथ-साथ संसार के दो बहुमूल्यतम रत्न—कंचन और कामिनी—जिसे भेंट में प्राप्त हों, उससे बड़ा भाग्यवान अपने को कौन समझ सकता है। खलीफ़ा ने इन सबको इस्लाम और उसकी शरीयत की बरकत समझा। उसने, उस धन-राशि का मूल्यांकन कराने के पश्चात्, उससे अपने राज्यकोश की शोभा बढ़ाई और उन कन्याओं में जो सबसे अधिक रूपवती थीं उन्हें अपने हरम में रख कर शेष लड़कियों में से कुछ को अपने परम प्रिय सम्बन्धियों और सेवकों में बाँट दिया और शेष को, जो सेविकाएँ तथा भृत्यवर्ग की स्त्रियाँ थीं, खुले बाजार में बिकवा दिया।[1]

जिन सर्वोत्तम सुन्दरी—कन्याओं की चर्चा ऊपर की गई है, उनमें एक ऐसी थी जो नाते में स्वर्गीय महाराज दाहिरराय

१. चचनामा (अंग्रेज़ी अनुवाद) पृष्ठ १७३

की बहन लगती थी। उसके सौन्दर्य पर ख़लीफ़ा मुग्ध हो गया। पर उसे, मुहम्मद-बिन-क़ासिम का सम्बन्धी अब्दुल्ला-बिन-अब्बास, जो रिश्ते में ख़लीफ़ा का सगा भतीजा था, भी चाहता था। वह ख़लीफ़ा के दरबार का प्रमुख सरदार और वज़ीर था। हरम में रखी जाने के पश्चात् भी वह उस राज-भगिनी को हस्तगत करने के तिकड़म में लगा रहा। ख़लीफ़ा इस बात को ताड़ गया, और उसने तत्काल राज-काज का बहाना बना कर अब्दुल्ला-बिन-अब्बास को हेजाज के दूसरे छोर पर भेज दिया।

मुहम्मद-बिन-क़ासिम की भेजी हुई भेंटों से ख़लीफ़ा इतना प्रसन्न और प्रभावित हुआ कि उसने तत्काल विशेष सन्देशवाहक के हाथ निम्नलिखित सन्देश उसे भेज दिया:—

"मेरे अज़ीज़ मुहम्मद,

"अल्लाह पाक ने तुम्हारे सिर पर कामयाबी का सेहरा बाँध कर हमारी हुकूमत के जाहोजलाल और तुम्हारी शख्सियत के जमालो-कमाल को इज्ज़त बख़्शा है। तुमने सोने और जवाहारात के अलावा जो नायाब तोहफे भेजे हैं उनकी यहाँ बड़ी क़द्र की गयी है। उम्मीद क़वी है कि तुम न सिर्फ हमारी हुकूमत का रुतबा बढ़ाओगे, बल्कि खुदा के फ़ज़ल से वह उरूज हासिल करोगे जो दुनियाकी दीगर इस्लामी ताक़तें अभी तक नहीं कर सकी हैं। मुझे तुम्हारे-जैसे ही सरदार

की जरूरत थी। तुम ने मेरी तवक्क्रो पूरी की है और मुझे उम्मीद है कि आगे भी करते रहोगे। खुदा का यही हुक्म है। वली, खलीफ़ा, हेजाज।"

रावर दुर्ग पर पूर्ण रूप से अधिकार कर लेने के पश्चात् मुहम्मद-बिन-क़ासिम को पार्श्ववर्त्ती गढ़ियों पर भी अधिकार कर लेने की चिन्ता हुई। ब्राह्मणाबाद पर आक्रमण कर सिन्धु-राज्य के मुख्य केन्द्र को विध्वंस करने के पहले वह प्राप्त भूखंड को पूर्णतः वश में कर लेने और उसे एक सूत्र में बाँध देने के पश्चात् ही भागे हुए शत्रु को छेड़ना और खदेड़ना चाहता था।

इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये, उसे सिन्धु के प्रसिद्ध सरदार मोक-बिसाया को आत्म-सर्म्पण करने के लिये विवश करना पड़ा। मोकबिसाया को सिन्धु-राज्य की गुप्त बातों का जितना पता था उससे अधिक मंत्रिवर शशिकर के अतिरिक्त और किसी को न था। अतः मोक-बिसाया को मिला लेने पर मुहम्मद-बिन-क़ासिम का कार्य बहुत कुछ सरल हो गया। मोक-बिसाया-द्वारा मुहम्मद-बिन-क़ासिम ने जाट-लोहाना, लाखा और सम्मा जातिवालों को अपने वश में कर लिया। मोक-बिसाया ने, मुहम्मद-बिन-क़ासिम को यह भेद बताया, कि स्वर्गीय महाराज दाहिरराय और उनके पूर्ववर्त्ती राजाओं ने लाखा और सम्मा जाति के लोगों को शूद्र

होनेके कारण जीवनकी सुन्दर सामग्रियों के उपभोगसे वंचित कर दिया था; यहाँ तक कि वे महीन वस्त्र तक धारण नहीं कर सकते थे। सिर पर मखमल नहीं पहन सकते थे। बोरे-जैसे मोटे वस्त्र पहनते थे और उन्हें जूते तक पहनने की आज्ञा नहीं थी। वे भूल कर भी कभी सिर पर टोपी या पाँव में जूता पहनते तो उन्हें दण्ड मिलता था। वे अपने साथ कुत्ते लेकर यात्रियों की रक्षा के लिये इधर-उधर भटकते फिरते थे। वे घोड़ों पर कभी चढ़ें भी, तो बिना लगाम लगाये और नंगी पीठ पर ही चढ़ सकते थे। अधिक से अधिक छूट यह थी कि वह घोड़े की पीठ पर कम्बल बाँध कर सवारी कर लें।[1] इन प्रतिबन्धों के कारण लाखा और सम्मा जाति के लोग सिन्धु राज के प्रति मन ही मन असन्तुष्ट थे और अब, जब कि एक विदेशी और विधर्मी शक्ति ने उनका सम्मादर करके उन पर लगे सारे नियन्त्रणों को छिन्न-भिन्न करके उन्हें जीवन की सभी सुख-सुविधाएं दे दीं, तो उनका उस शक्ति के प्रति विश्वासपात्र हो जाना स्वाभाविक ही था। इसी प्रकार, जाट और मेढ़ जाति के लोग भी, जो राजाओं के असमानतापूर्ण सामाजिक व्यवहारों से असन्तुष्ट थे, बड़ी आसानी से मुहम्मद-बिन-क़ासिम के वश में आ गये। रावर, अलोक, और निरुन के दुर्गों पर अपनी मढ़-रक्षिणी सेनाओं को तैनात

१. कारजतान लोहाना।

कर, मुहम्मद-बिन-क़ासिम ने ब्राह्मणाबाद पर आक्रमण करने की योजना बनायी।

× × ×

उधर ब्राह्मणाबाद पहुँच कर मंत्रिवर और महामाया ने अपना कार्य आरम्भ कर दिया। उनके पहुँचते ही राजवंश के सभी पुरुषों और सैनिक अधिकारियों में उत्साह छा गया। वे गढ़-रक्षा के लिए तैयारी करने में प्राणपण से जुट गये।

किन्तु ब्राह्मणाबाद नगर की बस्ती ऐसी थी जिसमें बौद्ध-धर्म का प्रभाव बहुत कुछ शेष था। यह नगर अभी तक युद्ध से बचते आने के प्रयत्न में ही लगा था। यह सच है, कि वर्णाश्रम धर्म के पुनर्संस्थापन के साथ इस नगर में केवल एक बौद्ध मठ और उसके अपेक्षाकृत अल्पसंख्यक अनुयायी भक्त ही शेष रह गये थे। किन्तु उन भक्तों और शिष्यों की, परम्परा से सर्जित आर्थिक स्थिति इतनी अच्छी थी कि वे जो काम हृदय से चाहते उसे कराने में सफल हो जाते थे। कुछ बौद्ध धर्मानुयायी, महाराज के आखेट आदि हिंसात्मक कार्यों के कारण उनके प्रति विक्षुब्ध हो गये थे। ब्राह्मण राजा दाहिरराय ने वहाँ ब्राह्मणों का प्रभुत्व बढ़ाने के निमित्त जो-जो प्रयत्न किये, वे इन बौद्ध-धर्मानुयायी भक्तों को नहीं भाते थे। कुछ बौद्ध नागरिक व्यक्तिगत कारणों से भी तत्कालीन सिन्धु-राज्य के अधिकारियों से अप्रसन्न थे और मन ही मन

उन्हें अपदस्थ करने का अवसर ढूँढ़ रहे थे।

मंत्रिवर शशिकर ने थोड़े ही समय में इन सभी छोटी-बड़ी बातों की ओर यथेष्ट रूप में लक्ष्य किया। वे इस परिणाम पर पहुँचे, कि ब्राह्मणाबाद की जनता को येन-केन-प्रकारेण वहाँ के शासकों के अनुकूल बनाना अनिवार्य है, अन्यथा, वहां विधर्मियों को पाँव टिकाने का स्थल मिल जायगा। यह सब सोच-विचार कर, मंत्रिवर ने एक ऐसा प्रयत्न आरम्भ किया जिससे ब्राह्मणाबाद में शत्रु को अपने गुप्तचर भेज कर भेद प्राप्त करने में सफलता न मिले। बौद्ध धर्माचार्य और मठाधीश से उन्होंने विनम्रतापूर्वक निवेदन किया, कि वे शत्रु के गुप्तचरों से सावधान रहें और यह भी अनुरोध कर दिया कि वे अपने शिष्यों को भी इस सम्बन्ध में सचेत कर दें।

किन्तु, जैसा कि आगे ज्ञात हो जायगा, मंत्रिवर शशिकर इस विषय में बहुत पिछड़े गये थे, क्योंकि, मुहम्मद-बिन-क़ासिम ने पहले ही अपने जासूस ब्राह्मणाबाद भेज दिये थे और उन गुप्तचरों ने अपना कार्य भी आरम्भ कर दिया था। उन्होंने यह अफ़वाह पहले से ही फैला दी थी कि अरब-सेना में अपूर्व और अजेय शक्ति है और उसका धनुर्धारी दल तो इतना प्रबल है कि पल भर में अपने भीषण प्रहार से विरोधियों के छक्के छुड़ा देती है, ऐसी दशा में अरबों की

विजय सुनिश्चित-सी है। इन गुप्तचरों ने अनेक धनाढ्य और शक्तिशाली नागरिकों तक यह सन्देश शुभचिन्तक बन कर पहुँचाया, कि जब शत्रु की विजय अटल है, तो उसका विरोध करने में सहायक होना अपने ही पाँव कुल्हाड़ी मारने के समान है।

इन गुप्तचरों ने, बौद्ध मठाचार्यों का शुभचिन्तक बन कर उनको यह परामर्श दिया, कि वे अपना गुप्त धन—स्वर्ण-रत्न-राशि छुपे स्थानों से निकाल कर मठ के खुले आँगन में गाड़ दें, जिससे शत्रु को कोई सन्देह न हो।

कहनेकी आवश्यकता नहीं, कि ये गुप्तचर विविध रूप में—कुछ तो बौद्ध भिक्षु बन कर और कुछ वैष्णव साधु एवं यात्री बन कर सारे नगर में बिखर गये थे और उन्होंने शत्रु के आक्रमण की बातें बहुत ही अतिशयोक्तियों के साथ इस प्रकार प्रसारित कीं कि जिससे नागरिकों पर एक प्रकार का आतंक-सा छा गया। यह कार्य कर चुकने के पश्चात, इन गुप्तचरों ने, तीर में कागज के टुकड़े बाँध-बाँध कर उन्हें प्रज्ज्वलित अग्नि-शिखा के साथ रात्रि के समय अश्वों के शिबिर की ओर फेंकने की योजना भी बना ली।

× × ×

इस प्रकार ब्राह्मणाबाद की स्थिति अभी उद्विग्नतापूर्ण थी और उसके दुर्ग में सैनिक व्यवस्था भी पूर्णता को नहीं पहुँच

पायी थी। मुहम्मद-बिन-कासिम जानता था कि ब्राह्मणाबाद पर आक्रमण करने में जितना विलम्ब होगा, आर्य सेना की व्यवस्था उतनी ही सुदृढ़ और स्थायी बन जायगी। इसी विचार से उसने अपनी पुनर्संगठित सेना का आधा भाग रावर में रख कर शेष आधे को ब्राह्मणाबाद-दुर्ग की ओर प्रस्थान करने का आदेश किया। यह सैन्य-दल दिनोरात चल कर, ब्राह्मणाबाद दुर्ग से आध कोस की दूरी पर स्थित विशाल बन में छावनी डाल कर पड़ गया। उषा के पहले जब अरब सेना पड़ाव डालकर कुछ सुस्ताने का उपक्रम करने लगी थी, उसी समय, ब्राह्मणाबाद नगर से अपने गुप्तचरों के भेजे हुए उपर्युक्त ढंग के सन्देश पाकर वह तुरन्त सचेत हो गई, और विश्राम लेने के बदले उसने तत्काल दुर्ग पर धावा बोल देने का निश्चय कर लिया। जिस समय यह आक्रमण हुआ, रात्रि एक प्रहर से कम शेष थी। मन्त्रिवर शशिकर और योगमाया को जब यह समाचार मिला कि शत्रु सिर पर आ पहुँचा और अभी तक महाराजकुमार जयसिंह अन्य आर्य-राजाओं की सहायता प्राप्त करके लौटे भी नहीं, तो वे समझ गये कि सिन्धु-राज्य के लिये अब भीषणतम संकट आ उपस्थित हुआ है। उन्होंने भरसक तैयारी करने का प्रयत्न किया, किन्तु, इतने अल्पकाल में विच्छिन्न साधनों को जुटाना और सुषुप्त जनता को जगाना कोई

सरल काम न था।

उधर मुहम्मद-बिन-क़ासिम ने अपनी सेना के तीन भाग कर लिये और अपने तीरन्दाज़ों की टोली एक प्रच्छन्न उच्च स्थल पर नियुक्त कर दी। गुप्तचरों के आदेशानुसार दुर्ग की दीवार जिस जगह सबसे दुर्बल थी, उसी के नीचे सुरंग खोद कर उसे गिरा देने का काम भी आरम्भ कर दिया गया।

मन्त्रिवर शशिकर ने, रावर दुर्ग की भाँति, यहाँ भी गुफा-द्वारा राजवंश के विशिष्ट सदस्यों—महाराजकुमारियों, छोटे बच्चों तथा वृद्ध राज्याधिकारियों को आवश्यकता पड़ने पर वहाँ से अन्यत्र भेजने की पूर्व-व्यवस्था कर ली थी; किन्तु रावर-दुर्ग में मुहम्मद-बिन-क़ासिम ने यह देख लिया था कि शत्रु गुप्त-मार्ग से दुर्ग के बाहर निकल गया था, इसलिये ब्राह्मणाबाद दुर्ग में भी वह उसकी पुनरावृत्ति की आशंका कर चुका था। इसके अतिरिक्त गुप्तचरों ने यह सूचना पहले ही दे दी थी, कि दुर्ग से अग्निकोण की ओर जानेवाली गुफा, अर्द्धकोस की दूरी पर बन में निकलती है और यह कि एक विशाल वट-वृक्ष का पार्श्व भाग, जो ऊपर से देखने में बावड़ी-जैसा ही प्रतीत होता है, गुफासे निकलने का मार्ग है। उन्होंने यह भी सूचित किया, कि उस गुप्त मार्ग से सिन्धु-राज्य का संचित समस्त धन और राज्य-परिवार के सदस्य बाहर भेज दिये जानेवाले हैं। मुहम्मद-बिन-क़ासिम ने उस

स्थान का महत्त्व सबसे अधिक समझा और अपने तीनों दलों में से एक को वन में भेज कर, वट-वृक्ष के पास पहरा डाल देने की आज्ञा दे दी।

पहली सैनिक टोली को अरब-सेना नायक ने यह आदेश दिया कि वह सीधे दुर्ग-द्वार को तोड़ देने का प्रयत्न करे; परन्तु ब्राह्मणाबाद का गढ़ बहुत सुदृढ़ था और उसका, फाटक एक ही विशाल लौह-खंड का था।

प्रभात काल से लेकर सारे दिन अरब-सेना उसे तोड़ने का प्रबल प्रयत्न करती रही, पर वह टस से मस न हुआ।

उधर दुर्ग के भीतर, समस्त राजपूत वीरों ने, मन्त्रिवर के आदेश से खड्ग उठा-उठा कर प्रण किया कि वे इस युद्ध में या तो लड़ कर विजयी होंगे, या फिर मर मिटेंगे। पराजित होकर जीवित रहने की भावना किसी के हृदय में भी उस समय न रही। दोनों महाराजकुमारियों—सूर्यदेवी और परिमलदेवी—को चुने हुए सेवक-सेविकाओं तथा प्रमुख सैनिकों की रक्षा में अतिशय मूल्यवान रत्न-राशि सहित, गुफा के गुप्त मार्ग से बाहर निकाल ले जाने की योजना महामाया ने अपने हाथों में ली। मन्त्रिवर शशिकर ने सबको एकत्रित कर अत्यन्त मार्मिक भाषण किया:—

"भाइयो,

'संगठन की कमी और साधन जुटाने की अक्षमता, एवं आर्य जाति के पारस्परिक अनैक्य के कारण हम इस बात के लिये बाध्य हो गये हैं कि ऐसी परिस्थिति में आत्मरक्षा की चिंता भी करें। हमारे रक्षक शूर तो लड़कर, महिलाएँ जौहर व्रत करके और राजवंश के बालवर्ग—जिनमें दो महाराजकुमारियां भी हैं—आत्मरक्षा के द्वारा अपने-अपने कर्त्तव्य का पालन करें।"

अरब-सेना, दुर्गद्वार न तोड़ सकी। फिर भी, मन्त्रिवर को उसके शस्त्रास्त्र-बल और उत्कृष्ट सैन्य-कौशल का ज्ञान था और इसीलिये उन्होंने महामाया की देख-रेख में एक विशिष्ट किन्तु संक्षिप्त सैन्य-दल के साथ महाराजकुमारियों और अन्य धन-जन को गुप्त गुफा-द्वार से बाहर भेज देने का उपाय तत्काल और सुरक्षित रूप से कर दिया। महाराजकुमारियों के साथ राजवंश के दो और छोटे बच्चे और कुछ चुनीहुई अत्यन्त विश्वस्त सेवक-सेविकायें आदिभी थीं।

पर गुफा के वनस्थित गुप्त द्वार पर अरब-सेना का एक बहुत बड़ा भाग पहले ही से पहरा डाले पड़ा था। अतः, जब यह राजकीय दल भूगर्भ-यात्रा पूरी कर उसके द्वार से निकला, तो अरबों ने अनायास महाराजकुमारियों, उनकी निकटवर्त्तिनी दासियों, रत्नराशि-वाहकों और अन्त में, कुछ

विशिष्ट सन्देह के साथ, महामाया आदि समस्त असैनिक जनों और सामग्रियों को अपने अधिकार में लेकर बन्दी बना लिया। जो सैनिक टुकड़ी इस राजकीय दल की रक्षा के लिये साथ थी उसके एक-एक सदस्य ने पूर्ण शौर्य का प्रदर्शन किया, किन्तु, शतगुनी अधिक शत्रु-सेना ने उन्हें थोड़ी ही देर में मार गिराया। यह कोलाहल सुन, गुफा में पीछे-पीछे आनेवाले अन्य भृत्य वर्ग अपना प्राण बचाने और सूचना देने के विचार से, पीछे किले के प्रांगण की ओर ही भाग गये।

इन भृत्यों ने, शीघ्रतापूर्वक किले में लौटकर मंत्रिवर को यह सूचना दी कि महाराजकुमारियाँ और महामाया समस्त धन-राशि-सहित अरबों द्वारा बन्दिनी बना ली गई हैं।

मन्त्रिवर शशिकर तुरन्त चौकन्ने हो उठे और उन्होंने तत्काल सोचा, कि तब तो संभवतः अरब-सेना का एक भाग गुफा के गुप्त मार्ग से ही दुर्ग में प्रविष्ट होने के लिये चल पड़ा होगा। उन्होंने दुर्ग में स्थित गुफा-द्वार के कपाट तत्काल बन्द करा दिये और उन पर बहुत भारी-भारी वस्तुएं लाकर जमवा दीं, जिससे शत्रु-सेना गुफा-मार्ग द्वारा नीचे से आकर उस द्वार को खोलने में असमर्थ हो जाय। इतना कर लेने के अनन्तर, मन्त्रिवर ने अपना वेश बदल लिया

और साथ ही उन अन्य राज्याधिकारियों का भी, जो उनके साथ किसी प्रकार दुर्ग से निकल जाने की पूर्व-योजना की सूची में आ चुके थे।

उधर, गुप्तचरों की सहायता से अब दुर्ग के पार्श्व में नियुक्त अरब-सेना को भी मुहम्मद-बिन-कासिम ने सूचना दे दी, कि अब गुफा-द्वार पर नियुक्त सेना गुफा के मार्ग से दुर्ग में घुस रही है, इसलिये, वह सैनिक भी गुफा के द्वार की ओर जाकर भीतर घुसने का प्रयत्न करें।

मन्त्रिवर शशिकर की अवस्था इस समय उस सिंह की सी हो रही थी जिसके दाँत और नख दोनों तोड़ दिये गये हों। वे इस समय नितान्त साधनहीन और धन-जनशून्य हो गये थे। उन्होंने सोचा, कि इस अवसर पर भी, यदि महाराजकुमार जयसिंह, सैनिक सहायता लेकर आ जाते या अन्य आर्य नरेश स्वतः-प्रेरित बुद्धि से अपना सैन्य-दल लेकर हमारी सहायता को आ पहुँचते, तो गुफा में घुस चुकी अरब-सेना को बड़ी आसानी से अपना आखेट बना सकते थे। इस प्रकार अरब-सेना का आधा बल घट जाने से दुर्ग-द्वार पर डटी शेष आधी सेना से वे सरलतापूर्वक लोहा ले सकते थे। किन्तु, यह सब सोचने से क्या लाभ ? मन्त्रिवर ने जब देखा कि दुर्ग के पार्श्व में स्थित अरब-सेना गुफा के वन-स्थित द्वार की ओर चली गयी है, तो उन्होंने अपने साथियों-

सहित, दुर्ग से रस्सियों की सीढ़ी द्वारा नीचे उतर जाने का सुअवसर प्राप्त कर लिया।

मन्त्रिवर के पूर्वादेशानुसार दुर्ग-स्थित आर्य सैनिकों ने निश्चय किया, कि किसी भी अवस्था में जब उन्हें युद्ध करना ही है तो दुर्ग के द्वार को बन्द रखना अब व्यर्थ होगा। उन्होंने अपने राजपूती साहस का संचय कर दुर्ग का लघु द्वार स्वयं खोल दिया, और एक साथ एवं अचानक आगे बढ़ कर शत्रुओं का संहार करने लगे। अरब-सेनाने यह समझा कि गुफा-मार्गसे आनेवाली उसकी सेना के एक भागने आर्य-सैनिकों को दुर्ग-आँगन से मार भगाया है, और इसीलिये वे स्वेच्छापूर्वक बाहर निकल कर प्राण बचाना चाहते हैं। इसी विचार से मुहम्मद-बिन-क़ासिम भी, इन राजपूत-सैनिकों को मारने की अपेक्षा जीवित बन्दी करने के प्रयत्न करने में लग गया। उन्होंने यह भी समझा कि अल्पसंख्यक सैनिक अब उनका कुछ भी नहीं बिगाड़ सकते, अत: उनका जीवित रहना एक दृष्टि से अरबों के लिये लाभदायक ही है। इसी कारण, उन्होंने इन सैनिकों को मारने की अपेक्षा जीवित पकड़ने का आदेश किया। परन्तु पीछे उन्हें यह देख कर महान आश्चर्य हुआ, कि इन राजपूतों में से प्रत्येक ने तब तक अपने हाथ से तलवार न छोड़ी और शत्रु का काटना बन्द किया, जब तक कि उसके प्राण-पखेरू उड़ नहीं गये।

इस प्रकार, एक प्रहर रात्रि व्यतीत होते-होते ब्राह्मणाबाद-दुर्ग पर अरब-सेना का अधिकार हो गया।

: ४ :

रत्नप्राप्ति

ब्राह्मणाबाद की विजय के पश्चात् मुहम्मद-बिन-क़ासिम को जो रत्न और रूप की विलक्षण राशियाँ प्राप्त हुईं, उन्हें उसने ख़लीफ़ा की सेवा में भेजने की व्यवस्था कर ली। भारतवर्ष की युगों की संचित सम्पत्ति इस प्रकार यहाँ से विदा होने लगी। इस रत्न-राशि में सभी नवरत्न—हीरे, मोती, माणिक्य, पन्ना, नीलम, गोमेद, वैडूर्य, प्रवाल, और पुखराज का चुना हुआ संग्रह था, जो महाराज दाहिरराय के पूर्ववर्ती

राजाओं के समय से ही पूर्णतः संचित और सुरक्षित रूप में रखा गया था। इन रत्नों में कुछ ऐसे नग भी थे, जिनका जोड़ संसार में मिलना कठिन था और जो उस काल में सहस्रों स्वर्ण-मुद्राओं के मूल्य के बराबर समझे जाते थे। इस संग्रह में ऐसी मुकुट-मणियाँ भी थीं जिनको धारण करने की अभिलाषा संसार में बड़े से बड़े सम्राटों को हो सकती थी। उनकी चमक और ज्योति विलक्षण थी, उन मोतियों का पानी इतना आभामय था कि उनके एक-एक दाने पर छोटे-मोटे राज्य निछावर हो सकते थे। इन रत्नों के कारण, भारतवर्ष का नाम सारे संसार के राज-दरबारों में विख्यात् था और इनमें से कभी-कभी एक-एक दाने को प्राप्त करने के लिये, महाराज दाहिरराय को कितने ही राजा अपनी प्रचुर स्वर्णराशि और भूखण्ड तक देने को प्रस्तुत हो गये थे। ये महाप्रकाश-मयी मणियाँ ऐसी नयनाभिराम और प्रिय थीं कि महाराज ने उनके इस तरह लुट जाने की कल्पना स्वप्न में भी न की थी। वे प्रतिदिन एक बार इन रत्नों की चमक-दमक और सौन्दर्य को देखते तथा उनके ग्रह-प्रभाव का वर्णन राज्य-ज्यौतिषी से सुनते थे। उन्हें क्या पता था, कि भारत के इस अद्वितीय रत्न-कोश को कोई विधर्मी और विदेशी इस प्रकार उड़ा ले जायगा कि उनके वंशधरों को उसका आभास तक न मिल पायेगा। यह सत्य है, कि उनके ज्यौतिषी ने बहुतों

का प्रभाव अत्यन्त अनिष्टकर बतलाया था, किन्तु साथ ही उस संग्रह में ऐसे भी रत्न मिलते थे, जिनका प्रभाव महाराज के लिये अत्यनुकूल बताया जाता था। जो हो, अब तो यह रत्नराशि उनके लिये विघातक सिद्ध हो गयी थी।

मुहम्मद-बिन-कासिम को प्राप्त हुई स्वर्णराशि में मुद्राओं के अतिरिक्त देवी-देवाओं की ठोस स्वर्ण-मूर्तियाँ, भाँति-भाँति के खिलौने आभूषण और पात्र थे, जिन्हें देख कर नेत्र तृप्त नहीं होते थे। इन्हें बगदाद भेजने के लिये सुदृढ़ पेटियों में बन्द किया गया, जिससे वे ऊँटों पर लाद कर सैनिक सुरक्षा में ख़लीफ़ा के पास पहुँच सकें।

रही रूप-राशि—महाराज की दोनों परम रूपवती अविवाहिता कन्याएँ—सूर्यदेवी और परिमलदेवी, सो उन्हें बन्दी बना कर हब्शी ग़ुलामों की देख-रेख में बुरके के अन्दर ही अन्दर बगदाद भेजने की व्यवस्था करली गई। मन्त्रिवर के परामर्श से, महामाया पहले ही से इन महाराजकुमारियों की प्रधान सेविका बन गयी थीं, अतः उन्हें भी दासी-मंडली की अध्यक्षा के रूप में, महाराजकुमारियों के साथ-साथ उनकी सुख-सुविधा के विचार से भेजने की स्वीकृति मुहम्मद-बिन-क़ासिम ने दे द.।

इन युगल राशियों को भेंट-स्वरूप भेजते हुए मुहम्मद-बिन-क़ासिम ने स्वयं अनुभव किया कि वह अपने स्वामी को

संसार का ऐसा अनुपम उपहार भेज रहा है जैसा कि आज तक किसी से भी न बन पड़ा होगा। इस अद्वितीय उपहार के साथ मुहम्मद-बिन-क़ासिम ने जो पत्र भेजा था उसमें इस्लाम के प्रसार और धन, रूप, यश, वैभव एवं दुर्गों और प्रमुख भूभागों को प्राप्त करने का वर्णन विशद रूप में किया गया था।

पत्र का सारांश इस प्रकार था:—

"दुश्मन के सर के अलावा खिदमते-आली में जो अशिया भेजी गयी हैं उनको हिन्द के खज़ानों के बेहतरीन ज़ेबाइश कहा गाता है। खुदा के फ़ज़ल और हुज़ूर के इक़बाल से देवल और रावर के बाद ब्राह्मणाबाद पर क़ब्जा हो गया है बेबहा जवाहरात के साथ जो ज़िन्दा जवाहरात भी खिदमत में भेजे गये हैं वे हिन्द के बेनज़ीर तोहफ़े हैं।..........उम्मीद है हुज़ूर हर दो जवाहरात की क़द्र करेंगे।.........मुहमद।"

रत्न-राशियों का भण्डार जब बग़दाद पहुँचा तो खलीफ़ा की राजधानी जगमगा उठी। एक ओर अरबों की विजय का प्रतीक महाराज दाहिरराय का कटा हुआ सिर और दूसरी ओर वे रत्नद्वय की राशियाँ—एक तटस्थ दर्शक के लिये भी यह कितना करुणापूर्ण दृश्य था। पर खलीफ़ा की राजधानी में इन रत्नों के प्रकाश से जो चहल-पहल, उत्साह और प्रसन्नता फैल गई, उसको देखते हुए यह कहना पड़ता है, कि रत्न और रक्त

का अन्योन्याश्रय-सम्बन्ध होता है । बिना रक्त बहाये रत्न प्राप्त नहीं हुआ करते और यदि किसी प्रकार वे सहज में प्राप्त हो भी जायँ तो उन्हें रखने—धारण करने की क्षमता हुए बिना, प्राप्तकर्त्ता उसे अपने पास नहीं रख सकता । उसे रखने के लिये मस्तिष्क में विवेक-बुद्धि और भुजाओं में असीम बल की आवश्यकता होती है ।

अस्तु, अरबों के हृदय में आह्लाद और आर्यों के वक्ष में शूल उत्पन्न करनेवाली दोनों वस्तुएँ-महाराज दाहिर के छिन्न मस्तक और महाराजकुमारियोंके रूप-यौवन एवं परम सौन्दर्य-मय नवरत्नों और स्वर्णराशियों के प्रदर्शन से खलीफ़ा का दर-बार दमक उठा । खलीफ़ा ने रूप-राशियों—महाराजकुमारियों को हरम में भेज कर प्रधान सेविका महामाया को आदेश किया कि उन्हें कुछ दिन विश्राम करने और समुचित रूप में खिलाने-पिलाने की व्यवस्था की जाय । इस प्रकार उनके लिये सुख-सुविधा की पर्याप्त व्यवस्था कर दी गयी ।

खलीफ़ा ने कुछ रत्न-विशेषज्ञों को बुला कर भारत की इस उत्कृष्टतम मणियों का मूल्यांकन कराना आरम्भ किया । मुहम्मद-बिन-क़ासिम के पत्र-द्वारा देवल और रावर के पश्चात् ब्राह्मणाबाद-दुर्ग पर भी अरब-सेना की विजय का समाचार पाकर तथा साथ ही द्विविधि रत्न-राशियों की भेंट का विवरण पढ़कर खलीफ़ा को असीम आनन्द हुआ ।

उसने अपने मन में सोचा, कि इस्लाम के प्रचार से अल्लाह ने उस पर कैसी नायाब बरकतें नाज़िल कर दी हैं। उसका हृदय पुलकित हो उठा और उसने सोचा कि अगर तमाम दुनियाँ में इस्लाम का बोलबाला हो जाय तो सारी खलकत की दौलत उसके कदमों पर लोटने लगेगी और सारी कायनात की नाज़नीन उसकी कदमबोसी करने लगेगी।

× × ×

मुहम्मद-बिन-क़ासिम केवल एक नवयुवक सेनापति ही नहीं था, वरन् अल्पावस्था में ही उसे मनुष्यों के गुणावगुण समझने और उनकी कद्र करने का अच्छा अभ्यास हो चला था। वह राजनीतिक दाँव-पेच का चतुर ज्ञाता होगया था। सफलताओं का ताँता बँध जाने पर मनुष्य की बुद्धि का विकास अपने-आप हो जाता है। देवल-दुर्ग के बाद, रावर-दुर्ग पर और रावर-दुर्ग के बाद ब्राह्मणाबाद-दुर्ग पर जिस सफलता के साथ उसने अधिकार कर लिया, उससे उसका साहस बहुत बढ़ गया। विजय के पश्चात्, स्थिति-स्थापन का प्रयत्न परिपक्व करने की व्यवस्था करने में भी उसने कोई शिथिलता नहीं दिखलाई। उसने अपने चतुर सलाहकारों की सहायता से वहाँ के बौद्ध मठाधीश और उसके धनाढ्य अनुयायियों और उच्च श्रेणी के व्यापारियों को अपने पक्ष में मिला लेने का प्रयत्न किया। उसको अपने

स्थानीय सहायकों से पता लग गया कि सभी बौद्ध धर्मानुयायी चाहे वे धर्माध्यक्ष हों अथवा भिक्षु, नगर-सेठ हों या जन-सामान्य, वर्णाश्रम धर्मानुयायी ब्राह्मणों के प्रबल विरोधी हैं। ऐसी दशा से वर्णाश्रमी महाराज दाहिरराय को हरा कर वह बौद्धों के लिये मनचाही स्थिति उत्पन्न करने में सहायक हुआ है, इसी विचार से वह एक दिन अपने मंत्रियों, सलाहकारों और कुछ प्रमुख बौद्ध-धर्मानुयायी नागरिकों के साथ बौद्ध-विहार देखने के लिये गया।

बौद्ध-विहार के मठाधीश ने अरब-सेनापति का स्वागत किया। और वे उसे भगवान बुद्ध की स्वर्ण-मूर्ति के सन्मुख ले गये। मुहम्मद-बिन-क़ासिम ने मूर्ति के निकट जाकर मठाधीश से पूछा—"आपका खुदा किस तरह खुश और किस तरह नाराज़ होता है?"

मठाधीशने इस प्रकार के प्रश्न का उत्तर देने के लिए तैयार न होते हुए भी कहा—"त्याग, तपस्या और सत्कर्मों से प्रसन्न और कुकर्मों से रुष्ट होते हैं।"

मुहम्मद-बिन-कासिम—"लेकिन, आपका खुदा भलाई-बुराई में क्या फ़र्क़ बताता है? क्या वह बता सकता है, कि मैंने ब्राह्मणाबाद फ़तेह करके भलाई का काम किया है या बुराई का?"

मठाधीश—"हमारे भगवान यह बात नहीं बताया

करते। वह तो हमारे मन में भलाई-बुराई समझने की शक्ति दे चुके हैं, फिर उनको बताने की आवश्यकता ही क्या है।"

मुहम्मद-बिन-क़ासिम—"अच्छी बात है! तो आप ही बताइये कि ब्राह्मणाबाद पर फ़तेह हासिल करके मैंने अच्छा काम किया है या बुरा?"

मठाधीश—"संसार में बाह्य रूप में उचित या अनुचित प्रतीत होनेवाले कार्यों का निर्णय हम नहीं कर सकते। परिणाम देखे बिना हम किसी भी नये कार्य के बारे में अपनी सम्मति नहीं प्रदर्शित कर सकते।"

मुहम्मद-बिन-कासिम ने हँस कर कहा—"बहुत अच्छा, आप हमारी हुकूमत देख कर तब हमारा साथ दीजिये।"

इसके पश्चात् मुहम्मद-बिन-क़ासिम ने कौतूहलवश भगवान बुद्ध की स्वर्ण-मूर्ति की ओर लक्ष्य करके कहा—"हम इस खुदा के खिलाफ़ नहीं हैं; आप देखेंगे कि हमारे ज़रिये आपका मज़हब फले-फूलेगा और इस्लाम के साथ-साथ वह फिर सारे हिन्दुस्तान पर छा जायगा।"

बौद्ध मठाधीश और उनके अनुयायी मुहम्मद-बिन-क़ासिम-द्वारा अपनी सम्मान-वृद्धि होते देख बहुत प्रसन्न हुए और उन्होंने उसे फूलों का हार पहनाकर एवं परम्परा के नाम पर कुछ स्वर्ण-मुद्राएँ भेंट करके वहाँ से विदा किया।

व्यक्ति विशेष का मत चाहे जो रहा हो, किन्तु ब्राह्मणा-

बाद पर मुहम्मद-बिन-क़ासिम की विजय ने उसके यश और आतंक को बहुत अधिक बढ़ा दिया। सभी पार्श्ववर्त्ती छोटे-बड़े सामन्त और राजा उसके इंगित पर नाचने लगे। इस प्रकार, ब्राह्मणाबाद की विजय के पूर्णतः परिपक्व हो जाने के पश्चात् मुहम्मद-बिन-क़ासिम ने बहरूर, ढालिया, नूबा और धारन की गढ़ियों पर अनायास ही अधिकार कर लिया। इन स्थानों से भी पर्याप्त रत्न और स्वर्ण-राशियाँ उसके हाथ लगीं।

मुहम्मद-बिन-क़ासिम एक सच्चे स्वामिभक्त के समान, प्रत्येक विजय और अधिकार के पश्चात् प्राप्त धन और रूप-राशियाँ सुरक्षित रूप से ख़लीफ़ा के पास भेजता रहा।

दक्षिणी सिन्धु के प्रायः सभी प्रमुख स्थानों पर अधिकार करके और वहाँ मसजिदें, खानकाहें आदि बनवा कर मुहम्मद-बिन-क़ासिम ने यह निश्चय किया कि अब वह अवसर आ गया है जब सिन्धु की व्यापारिक राजधानी और तत्कालीन भारत के श्रेष्ठ धनाढ्य नगर मुलतान पर विजय प्राप्त करने के लिये चढ़ाई की जाय। उसे स्थानीय लोगों ने बताया कि जब तक वह मुलतान नगर पर विजय प्राप्त नहीं कर लेता, तब तक उसक सिन्धु-विजय का कोई अर्थ नहीं है। इसी कारण, उसने अपने विजित सभी दुर्गों को सुदृढ़ करके अपनी सेना का पुनसंगठन किया और कुछ नये एतद्देशीय

विश्वस्त सैनिकों— जाट, मेढ़, लोहाना, लाखा, सम्मा आदि उपेक्षित वर्ग के लोगों को भरती किया। इसके अतिरिक्त उसने अपनी तीरन्दाज टोली को और भी सुदृढ़ बना लिया और गुप्तचरों में अपने विश्वस्त सिन्धुवासियों को भी पर्याप्त संख्या में भरती कर लिया।

इस प्रकार, सारी तैयारी पूरी करके मुहम्मद-बिन-क़ासिम ने मुलतान पर अभियान का दृढ़ निश्चय कर लिया। सभी प्रकार की कुशल सेनाओं का सामंजस्य यथोचित रूप में कर चुकने पर, उसने एक दिन सहसा उस ओर प्रस्थान करने का आदेश अपनी सेना को दे दिया। उसने कानोंकान किसी को भी यह ख़बर न होने दी कि वह मुलतान पर चढ़ाई करने जा रहा है। सबसे उसने यही कहा कि वह अस्कनन्दा नगर की गढ़ी पर चढ़ाई करने के लिये रवाना हो रहा है; पर उच्चाधिकारी और विशिष्ट सैनिक यह बात अवश्य जानते थे कि अस्कनन्दा की छोटी-सी गढ़ी को जीतने के लिये इतनी बड़ी सैनिक तैयारी करने की आवश्यकता नहीं हो सकती। जो हो, इस बहाने वह उत्तराभिमुख हो गया और कई दिन की अनवरत यात्रा के पश्चात् अस्कनन्दा पर उसने केवल एक प्रहर में अनायास अधिकार कर लिया। अस्कनन्दा को जीतने के बाद, यदि इसे 'जीत' न कहें तो ही ठीक होगा, क्योंकि वहाँ बहुत ही थोड़े सैनिक

थे, मुहम्मद-बिन-क़ासिम ने अपने आदमियों को बताया कि अब वह मुलतान पर चढ़ाई करना चाहता है।

मुलतान पर उस समय स्वर्गीय महाराज दाहिरराय के भतीजे राजा गुरुसिंह का शासन था। उन्होंने अरबों की-विजय के समाचार सुन-सुन कर मुलतान-दुर्ग की रक्षा के लिये पर्याप्त व्यवस्था कर ली थी और रण-निपुण राजपूतों को आमंत्रित कर, भारत के इस विशाल व्यापारिक नगर मुलतान की रक्षा की व्यवस्था अच्छी तरह कर ली थी।

× × ×

उधर कुरज से निराश लौटे हुए महाराजकुमार जयसिंह ने अपने चचेरे भाई गुरुसिंह से मुलतान जाकर परामर्श किया। गुरुसिंह में स्वार्थ की मात्रा बहुत थी इसलिये उसने स्वयं अपने चचेरे भाई को भी विशेष सहायता न की और यह कहकर टाल दिया, कि इस समय तो वह स्वयं मुलतान की रक्षा के लिये चिन्तित है अतः उसके पास सैनिकोंका अभाव है। आँसू पोंछने के लिये, उसने भाई की कुछ आर्थिक सहायता अवश्य कर दी।

मुलतान से भी निराश होकर महाराजकुमार जयसिंह काश्मीर की ओर चले गये, क्योंकि अब सारे पश्चिमीय भारत में उन्हें काश्मीर से अच्छा कोई सहायक राजा न जँचा। मुलतान का दुर्ग ऐसा सुदृढ़ और अभेद्य था कि उसे

तोड़ लेना कोई सामान्य बात न थी। मुलतान नगर से केवल कुछ कोस की दूरी पर पहुँच जाने के पश्चात् मुहम्मद-बिन-क़ासिम ने विचार करना शुरू किया, कि वह किस प्रकार दुर्ग पर विजय और नगर-निवासियों पर आतंक फैला कर मार्त्तण्ड-मन्दिर की विशाल सम्पत्ति अपने अधिकार में कर सकता है। उसने अपने गुप्तचरों की एक टोली मुलतान नगर को पहले ही भेज दी और उसे आवश्यक भेद प्राप्त करने का आदेश कर दिया।

दुर्ग-विजय के लिये उसे दीवार के बीच सुरंग, खोदने के अतिरिक्त कोई युक्ति ठीक नहीं जँचती थी, क्योंकि, किले का सुदृढ़ द्वार तोड़ना एक प्रकार से असंभव था। ऐसी अवस्था में, मुहम्मद-बिन-क़ासिम ने कुछ और आगे बढ़कर सघन बन में अपना सैनिक डेरा डाल दिया और सन्ध्या के समय जासूसों से यह भेद प्राप्त करके, कि किस दिशा में दुर्ग की दीवार सुरंग खोद कर सरलतापूर्वक गिराई जा सकती है, अपने कारीगरों को उस काम के लिये भेज दिया, जिससे वे रातोरात खुदाई का काम पर्याप्त रूप में कर लें।

गुप्तचरों-द्वारा मुहम्मद-बिन-क़ासिम को यह भी सूचना मिली कि गढ़ जीतने के पूर्व ही यदि नगर के बाहर पूर्व-दिशा में स्थित मार्त्तण्ड-मन्दिर पर आक्रमण कर दिया जाय तो अपार स्वर्ण-राशि वहाँ से पहले ही हाथ लग जा सकती है।

मार्त्तण्ड-मन्दिर मुलतान के प्रथम शासक महाराज जीवनराम-द्वारा निर्मित कराया गया था। इस विशाल मन्दिर में सूर्य भगवान की मनुष्याकार ठोस मूर्ति स्वर्ण-निर्मित और रत्नभूषित थी। उस मूर्ति के माथे पर बीचो बीच एक ऐसा बड़ा हीरा जड़ा हुआ था, जिसके प्रकाश से सूर्यदेव की प्रतिमा के मुख-मंडल पर दृष्टि स्थिर नहीं होती थी। मूर्त्ति के गले में पहनाये गये नवरत्नों के हार इस प्रकार गूँथे गये थे, कि उनकी प्रकाश-रश्मियाँ सूर्य भगवान की प्रतिमा के मुख-मंडल के चारों ओर इन्द्र-धनुष का आकार उपस्थित करती थीं। उसके मस्तक पर जो मुकुट था उसमें भी मणियों का जड़ाव इतना सुन्दर और कौशलपूर्ण था कि उससे मूर्त्ति की छवि बहुत अधिक बढ़ जाती थी। मूर्त्ति के भुजदण्डों में भी, रत्नों के आभूषण पहनाये गये थे तथा कलाइयों पर रत्न के आभूषण बाँधे गये थे। मूर्त्ति के नेत्रों का निर्माण रत्नों के अद्भुत सम्मिश्रण के साथ हुआ था, और वह देखने में मानवीय नेत्रों के समान प्रकाशमान थे। इस प्रतिमा को अत्यन्त चमकीले भारतीय क्षौम्य का अंग-वस्त्र और उसी की धोती पहनाई गई थी और जिस ठोस स्वर्ण-निर्मित रथ पर इस मूर्त्ति को बिठाया गया था, उसमें भी रत्नों का जड़ाव उनके रंग के अनुपात और सौष्ठव की दृष्टि से इस प्रकार किया गया था कि दर्शकों के नेत्र उसे

अपलक देखना चाहते थे। इसके अतिरिक्त, भगवान् सूर्य के सप्ताश्वों—सातों घोड़ों का निर्माण भी स्वर्ण ही से हुआ था और उन पर भी हीरे, माणिक्य, नीलम और मोतियों का सुन्दर जड़ाव था। सातों घोड़ों के नेत्र भी रत्न-निर्मित थे और वे देखने में जीवित घोड़ों के नेत्रों के समान दिखाई देते थे। इस मूर्ति-कक्ष में प्रवेश करते ही दर्शनार्थी की आँखें उसके प्रकाश की आभा से चकाचौंध हो जाती थीं। सूर्य भगवान की मूर्ति को वास्तव में पृथ्वी पर स्थित सूर्यदेव ही बना दिया गया था। इस मूर्त्ति-कक्ष के नीचे एक विशाल तलघर था, जिसमें मन्दिर के निर्माता महाराज जीवनराय के समय से सर्जित और निरन्तर वर्द्धित स्वर्ण-राशि संग्रहीत थी।

मुहम्मद-बिन-क़ासिम ने अपने कर्त्तव्य का निश्चय कर लिया। उसने आदेश किया कि उसकी सेना का एक भाग दुर्ग को घेरे रहेगा, नाफ्ता-धारी आवश्यकता पड़ने पर, ऊँचे वृक्षों पर से गुप्त रूप में तीरों की बौछार करेंगे। एक टोली दीवार के नीचे सुरंग खोदनेवालों की सहायता करेगी। तीसरा भाग नगर के बाहर पड़ाव डाले रहेगा, जिससे वह नगर-निवासियों की गतिविधि का पता लगता रहे। गुप्तचर अपना काम करेंगे और सेना का सबसे बड़ा भाग उसके साथ मार्त्तण्ड-मन्दिर की ओर चलेगा। उसने यह योजना

बना ली थी, कि सुरंग की खुदाई और मन्दिर की लूट, दोनों ही कार्य साथ-साथ चलेंगे। मन्दिर के रक्षकों को मारकर और पुजारियों को प्रताड़ित करके मूर्ति, रथ और अश्वों को तोड़कर उनके टुकड़े पेटियों में बन्द करके, मन्दिर की और भी जो स्वर्ण-रत्न-सम्पत्ति प्राप्त होगी, उसे बाँधकर सुरक्षित रूप में प्रमुखनगर ब्राह्मणाबाद भेजने का कार्य किया जायगा जिससे वहाँसे सुविधा के साथ बगदाद भेजा जा सके।

जिस समय अरब-सेना ने मन्दिर को जा घेरा और क्षण भर में ही उसके रक्षकों को वहाँ से मार भगाया, तो मन्दिर के ब्राह्मण पुजारियों के हाथ-पाँव फूल गये। उन्होंने मार पड़ने के पहले ही त्रस्त होकर मुहम्मद-बिन-कासिम से इस प्रकार प्रार्थना की—"अरबाधिपति, यदि आप भगवान् की मूर्ति को हाथ न लगायें, तो हम मन्दिर का सारा गुप्त धन बिना किसी आपत्ति के स्वयं सौंपने को तैयार हैं।"

मुहम्मद-बिन-कासिम—"आपकी बात मुझे मंजूर है—हम आपके खुदा को नाराज़ नहीं करना चाहते, और अगर आपकी बतायी जगहों में मन्दिर का सारा सोना और जवाहरात हमें दस्तयाब हो जायँगे तो हम बुत को हाथ न लगायेंगे।"

वास्तव में, मुहम्मद-बिन-कासिम जो चाहता था वही हो गया। वह जानता था कि मूर्त्ति को तोड़ना

और उठा ले जाना तो बहुत सहज है, क्योंकि वह प्रकट वस्तु है; किन्तु बिना गुप्त भेद जाने गुप्त धन का प्राप्त करना असम्भव नहीं तो कठिन अवश्य है। इसी कारण उसने ब्राह्मणों का प्रस्ताव स्वीकार कर लिया, और तदनुसार उसे तलघर में सुरक्षित समस्त स्वर्ण और रत्न-राशि बिना किसी आपत्ति के सौंप दी गई। मन्दिर की इस विपुल सम्पत्ति में तेरह हजार दो सौ मन सोना, चालीस घड़े स्वर्ण-धूलि और कितने ही रत्न थे जिसमें माणिक्य और मोतियों की संख्या अधिक थी।[1]

इस प्रकार मन्दिर के तलघर में छिपी समस्त धन-राशि प्राप्त करके मुहम्मद-बिन-कासिम ने पुजारियों से कहा—"अब मैं आपके भगवान का दर्शन करूँगा, क्योंकि उसने मुझे इतना धन दिलाया है!" ब्राह्मणों ने भय के मारे मूर्ति-कक्ष का कपाट बन्द कर रखा था, पर अब अरब-सेनापति का यह अनुरोध सुन उन्होंने समझा कि उसके हृदय में सचमुच सूर्य भगवान के लिये श्रद्धा उत्पन्न हो गई है। यही सोच कर उन्होंने तुरन्त कपाट खोल दिया। सूर्य भगवान की मनुष्याकृति मूर्त्ति की शोभा और लोकोत्तर आभा देखकर मुहम्मद-बिन-कासिम चकित रह गया। मानव-कल्पना इतने सौन्दर्य की

---

१ चचनामा (डा० इ० कृत अंग्रेजी अनुवाद) और हिस्ट्री आफ़ इण्डिया विंसेण्ट स्मिथ-कृत।

सृष्टि कर सकती है, इसका अनुमान उसे नहीं था। किन्तु, अरब-सेनापति उस मूर्त्ति को देख कर बह जानेवाला नहीं था। उसके बहुमूल्य रत्नों और स्वर्ण के मूल्य का उसी तरह अनुमान लगाया जिस प्रकार बधिक बध्य पशु के मांस-चर्म के मूल्य का लगाता है, और दूसरे ही क्षण अपने सैनिकों को आदेश किया कि यदि ये पुजारी कहीं और छिपाये हुये गुप्त धन का पता बतायें तो इनकी मूर्त्तियाँ भंग न करने का वचन दिया जा सकता है। सैनिकों ने पहले तो पुजारियों को मौखिक रूप से समझाया; पर जब पुजारियों ने देखा कि अरब-सेनापति की नीयत शुद्ध नहीं है, तो उन्होंने एक शब्द भी मुँह से नहीं निकाला। इस पर मुहम्मद-बिन-क़ासिम ने अपने आदमियों को आज्ञा दे दी कि वे पुजारियों को कोठरी में डाल कर पीटना शुरू करें। ऐसा ही हुआ और थोड़ी ही देर में प्राण-हानि के भय से एक पुजारी ने अरब-सेनापति को बता दिया कि मंदिर-द्वार से पूर्व-दिशा में पाँच सौ हाथ दूरी पर वट-वृक्ष के ठीक उत्तर में पचास हाथ के अन्तर पर, एक दो सौ हाथ लम्बा, और दो सौ हाथ चौड़ा, चौरस भूखंड है, जिसे दस हाथ गहरा खोदने पर मुलतान-राज्य के प्राचीन उस कोश का बहुत बड़ा भाग प्राप्त हो सकता है, जिसमें स्वर्ण और रौप्य-मुद्रायें भरी पड़ी हैं।

यह भेद पाकर मुहम्मद-बिन-क़ासिम प्रसन्न हुआ और

उसने अपने बहुत से आदमी उस राज्य-कोष को खोदने में लगा दिये, जिसमें से निकली हुई केवल स्वर्ण-मुद्राओं का भार, तीन सौ तीस मन था।[1]

राज्यकोष का धन प्राप्त करने के पश्चात् मुहम्मद-बिन-क़ासिम ने मार्त्तण्ड भगवान् की मूर्त्ति, उनके रथ और घोड़ों सहित खण्डित कर दी और उसके टुकड़े-टुकड़े करके अपनी पूर्व-योजनानुसार पेटियों में बन्द करा दिया। प्रधान पुजारी ने जब सुना कि मूर्त्ति खण्डित हो गई है तो वह पार्श्ववर्त्ती कोठरी से ही चिल्ला-चिल्लाकर यवनों को शाप देने लगा। पर दुर्भाग्य-वश उस शाप से उनका बाल भी बाँका नहीं हुआ। उलटे पुजारी को ही अपने प्राणों से हाथ धोना पड़ा।

× × ×

उधर दुर्ग की दीवार में जो सुरंग खोदी जा रही थी उसका काम भी इस समय तक पूरा हो चला था और एक ओर की दीवार धराशायी हो जाने के कारण किले की दुर्भेद्यता समाप्त हो गई थी। अब युद्ध के लिये रास्ता खुल गया। मुलतान-दुर्ग के वीरों ने पूर्ण शौर्य के साथ अपने खड्ग-कौशल का परिचय देने का निश्चय कर लिया था, परन्तु

---

१. चचनामा (इलियट कृत अंग्रेज़ी अनुवाद) के आँकड़ों के अनुसार आधुनिक गणक उस धन का मूल्य सवा पन्द्रह अरब रुपये आँकते हैं। —लेखक

दीवार गिरते ही पार्श्ववर्त्ती वृक्षों पर नियुक्त अरब-तीरन्दाजों ने प्रबल तीरों की बौछार आरम्भ कर दी। परिणाम यह हुआ कि जो क्षत्रिय वीर म्लेच्छ-सेना पर आक्रमण करने के लिये आगे बढ़े थे उनमें से आधे से अधिक तो धराशायी हो गये और जो बचे, उनके लिये प्राण बचाकर भागना कठिन हो गया। केवल दो सौ तीरन्दाजों की टोली ने दस सहस्र राजपूत सैनिकों के पाँव उखाड़ दिये। अब क्या था, अरब सेना ने उनका पीछा किया। यह देखकर राजपूत लौट पड़े और उन्होंने निश्चय किया कि जिस प्रकार हो वे रणभूमि में लड़कर ही प्राण देंगे। अरबों ने इस बात का प्रयत्न किया कि यदि आर्य सैनिक आत्मसमर्पण कर दें तो युद्ध करने की आवश्यकता नहीं। पर जब तक एक भी क्षत्रिय युद्ध-भूमि में जीवित रहा, तब तक लड़ाई बन्द नहीं हुई। दुर्भाग्यवश इस युद्ध में न तो राजा गुरुसिंह ही अपना कोई विशेष रण-कौशल दिखा सके और न उनके सैनिक ही। जिस प्रकार मुलतान का सारा धार्मिक और राजकीय धन लुट गया, उसी भांति वहाँ के वीरों का अस्तित्व भी मिट गया।

मुलतान की विजय के फलस्वरूप प्राप्त समस्त धन ऊँटों और बैलगाड़ियों पर लादकर एक विशिष्ट तीरन्दाज टोली और रक्षक सैनिक दल के साथ ब्राह्मणाबाद भेजा गया और

दुर्ग एवं नगर पर अधिकार करने के लिए अरब-सेनापति ने विधिवत् कार्यशीलता प्रारम्भ कर दी। उसने नगर के व्यापारियों को निर्भय करने के लिये उनकी एक सभा बुलाई और उसमें यह घोषणा कर दी कि वह व्यापारियों का मित्र है, उसका झगड़ा और युद्ध केवल राजा से था और वह भी इसलिये कि राजा गुरुसिंह ने चुपचाप आत्मसमर्पण नहीं किया। प्रजा को वह किसी प्रकार कष्ट नहीं देना चाहता और न उसके धन-दौलत का ही भूखा है।

: ७ :

उद्धार

मुलतान पर विजय प्राप्त कर लेने के पश्चात् मुहम्मद-बिन-क़ासिम को ऐसा प्रतीत हुआ मानो उसने समस्त आर्यावर्त्त को जीत लिया हो। इसका कारण यह था कि उसे वहाँ से इतना अधिक धन मिल गया था जिससे वह अपनी सेनाओं का शिक्षण और वर्द्धन वर्षों तक बगदाद से कोई सहायता प्राप्त किये बिना चालू रख सकता था। दूसरा कारण यह था कि मुलतान में उसे नागरिक सहायता और

सहयोग अनायास प्राप्त हो गया। व्यापारी, स्वभाव से ही भीरु होते हैं। वे और कुछ भले ही सहन कर लें, पर अपनी व्यापारिक क्षति उनके लिये असह्य हो उठती है। ऐसी दशा में, मुलतान के भारत-विख्यात् व्यापारियों ने नवागन्तुक शासक को सहयोग देने में ही अपनी भलाई समझी। मुलतान-विजय के अनन्तर, उसने पार्श्ववर्त्ती छोटे-बड़े राजाओं और सामन्तों पर अरब-सेनापति की अनायास ही विजय हो गई, क्योंकि उन राजा-सामन्तों ने न तो पारस्परिक संगठन किया और न वे व्यक्तिगत रूप से लड़ने का पराक्रम दिखा सके। उस समय, उनके सामने आत्मसमर्पण के अतिरिक्त और कोई उपाय ही नहीं रह गया था। आर्य जाति के शासकवर्ग में निराशा और और पराजय की भावना भर गई थी।

मुहम्मद-बिन-क़ासिम ने विशेष विरोध न देख मुलतान में तत्काल इस्लाम का झण्डा फहरा दिया। मसजिदों और खानकाहों का निर्माण करने की आज्ञा दे दी और मुख्य-मुख्य स्थानों पर अपने सहायक सैन्याधिकारी सैन्य-दल सहित नियुक्त कर दिये। मुलतान में जुमा-मसजिद बनाने और झेलम के किनारे ब्रह्मपुर में, नदी का तट-कर वसूल करने के लिये मुहम्मद-बिन-क़ासिम ने अपने कुशल शासक मियाँ अकरम को सूबेदार नियुक्त कर दिया। यही मियाँ

अकरम, मुलतान और उसके पार्श्ववर्त्ती क्षेत्रों का एक सूबा बना कर उसका शासन करने लगे।

यह अवस्था बना लेने के पश्चात्, मुहम्मद-बिन-क़ासिम ब्राह्मणाबाद लौटा और वहाँ मुलतान की लूट का सारा माल खलीफ़ा की सेवा में भेजने की सुरक्षापूर्ण व्यवस्था करने में लग गया। इसमें सन्देह नहीं कि मुलतान के मार्त्तण्ड-मंदिर की लूटी हुई स्वर्ण और रत्न-राशि इतनी बड़ी थी कि उसकी बराबरी में रावर और ब्राह्मणाबाद दुर्ग से भेजी हुई पूर्ववर्त्ती स्वर्ण और रत्नराशियाँ नगण्य थीं; किन्तु इस बार की मुलतान की लूट रूप-राशि की दृष्टि से अवश्य ही रिक्त थी, क्योंकि महाराजकुमारियों—सूर्यदेवी और परिमलदेवी को बन्दिनी बना कर भेज दिये जाने के पश्चात् सभी राजपूत अपने परिवारों को अपने सुदूरवर्ती ग्राम-स्थित घरों और जंगलों में रखने लगे थे। मुलतान के राज-परिवार में जो महिलाएँ और राजकुमारियाँ थीं उन्हें सुरक्षा के निमित्त कान्यकुब्जाधिपति की सेवा में राजा गुरुसिंह पहले ही भेज चुके थे।

भारतवर्ष की इस तृतीय और विशालतम धनराशि को बगदाद भेजने के पहले ही मुहम्मद-बिन-क़ासिम ने वेगवान अश्वारोहियों-द्वारा मुलतान विजय और उससे प्राप्त धन का विवरण खलीफ़ा वली को लिख भेजा था। उसके पश्चात्, स्वर्ण और रत्न-राशि को ऊँटों पर लाद कर अत्यन्त

सुरक्षित रूप से सैन्य दल के साथ बगदाद भेज कर वह उधर से निश्चिन्त हो गया। केवल स्वर्ण और रौप्य-मुद्राएं उसने पास रख ली थीं जिसमें से मुलतान-विजय का श्रेय प्राप्त करनेवालों को एक अंश पुरस्कार के रूप में बाँट दिया। किन्तु, इस धन का विवरण भी मुहम्मद-बिन-क़ासिम ने एक पक्के स्वामिभक्त के समान खलीफ़ा वली को लिख भेजा।

यह सब करने के अनन्तर मुहम्मद-बिन-क़ासिम को इस बात का ध्यान विशेष रूप से आया कि उसने अभी तक अपने मजहब के लिये कोई उल्लेखनीय बात नहीं की है। इस दिशा में उसने पहला कदम यह उठाया कि सिंधु के सभी पराजित ठिकानेदारों और सामन्तों को इस्लाम क़बूल करने की दावत दी और साथ ही यह भी बतला दिया, कि जो ठिकानेदार ऐसा नहीं करेगा उसको अपने राज्य की आय का आधा भाग मुहम्मद-बिन-क़ासिम को जज़िया के रूप में भेंट करना पड़ेगा।

× × ×

मंत्रिवर शशिकर ब्राह्मणाबाद की पराजय के पश्चात् वेश बदल कर इधर-उधर विचरण कर रहे थे और अपने गुप्तचरों द्वारा मुहम्मद-बिन-क़ासिम की प्रतिदिन की गति-विधि का पता लगा रहे थे। उन्हें जब मालूम हुआ कि अरब-सेनापति अब इस्लाम मजहब फैलाने के लिए तत्पर हो गया

है, तो उन्होंने सर्वप्रथम भिन्न-भिन्न स्थानों में स्त्री-पुरुषों के ऐसे दल संगठित करने की योजना बनाई जो विधर्मी और विदेशी संस्कृति से भारत की रक्षा करने के लिये, उचित और अनुचित, वैध और अवैध, वांछनीय और अवांछनीय, तथा स्तुत्य और घृणित—सभी प्रकार के कार्य करने को तत्पर हो जायँ।

यह तैयारी कर लेने के अनन्तर, मंत्रिवर ने एक अद्‌भुत योजना बनाई। उन्होंने अपने निकटस्थ और प्रिय सह-योगियों और उनके साथ शिक्षणप्राप्त विशिष्ट व्यक्तियों का एक निश्शस्त्र दल तैयार किया, और मुहम्मद-बिन-क़ासिम के सामने जाकर आत्म-समर्पण और इस्लाम की स्वीकृति का सुन्दर एवं सफल स्वांग उपस्थित करने का निश्चय कर लिया और उस कार्यान्वित करने को प्रस्तुत हो गये।

मन्त्रिवर शशिकर ने मुहम्मद-बिन-क़ासिम के समक्ष उपस्थित होकर राजकीय ढंग से अभिवादनपूर्वक कहा—"अरबाधिपति, अब आप सिन्धु के स्वामी बन चुके हैं, अतः हमलोगों का विरोध समाप्त हो चुका, क्योंकि हम तो सेवक थे और अब हम उसी प्रकार आपकी सेवा करना चाहते हैं जिस प्रकार पहले राज्य की करते थे। आप समझ सकते हैं कि मैं कोई दूसरा कार्य नहीं कर सकता; न करने में शोभा ही है। ऐसी दशा में मैं तो अपना पूर्ववर्त्ती पद प्राप्त करने की

ही अभिलाषा रखता हूँ। राजा कोई हो, पर मंत्री बनने की आकांक्षा मेरी ही है। मुझे हिन्दू-धर्म के प्रति कोई आस्था नहीं है—विशेषकर उसकी विषम वर्ण-व्यवस्था बड़ी ही घृणित है, और इस्लाम में सभी छोटे-बड़ों को समान समझने का जो सद्गुण है उसके कारण मुझे ऐसा लगता है कि वह सारे संसार में व्यापक बनकर रहेगा। उसका उज्ज्वल भविष्य देखकर हमने निश्चय कर लिया है कि हम उसमें दीक्षित हो जायँ। मेरे साथी ये समस्त विश्वस्त लोग भी जो पहले राज्य में विविध पदों पर थे इस्लाम-धर्म ग्रहण करने और उसकी सेवा करने को तैयार हैं।

मुहम्मद-बिन-क़ासिम ने इस दल का बड़ा स्वागत किया और उसे अपने मौलवी से विधिवत इस्लाम की दीक्षा दिलाने के पश्चात् एक विशिष्ट शिविर में रख दिया। मुहम्मद-बिन-क़ासिम ने इस पर भी अपनी सतर्कता ढीली नहीं की। इन नव-मुस्लिमों की परीक्षा की कसौटी पर कसा और कुछ समय तक उनको सन्देह की दृष्टि के देखता रहा। पर अब उसने भली भाँति देख लिया, कि अब मंत्रिवर शशिकर पर पूर्णतया विश्वास किया जा सकता है, क्योंकि, उसकी दृष्टि में मंत्रिवर की मनोदशा पूर्णतः परिवर्त्तित हो चुकी थी। उसने यह भी देखा कि सम्मा जाति के अधिकार-सम्पन्न लोग स्थान-भ्रष्ट हो जाने के पश्चात् अपने को पुनः पूर्वपद पर

स्थापित देखने की अभिलाषा रखते और निरन्तर उसी का स्वप्न देखा करते हैं। अपनी विचित्र बुद्धि के बल पर मंत्रिवर ने शीघ्र ही मुहम्मद-बिन-क़ासिम पर ऐसा जादू डाला कि अरब सेनापति ने धीरे-धीरे उन पर विश्वास करते-करते उन्हें अपना ख़ास सलाहकार नियुक्त कर लिया।

अपनी विलक्षण बुद्धि और तीव्र परीक्षण-शक्ति के द्वारा मंत्रिवर ने एक-एक करके मुहम्मद-बिन-क़ासिम के सभी रहस्य जान लिये।

अन्ततः एक दिन अवसर पाकर, मंत्रिवर शशिकर और अरब-सेनापति में निम्नलिखित वार्त्तालाप हुआ:—

मुहम्मद-बिन-क़ासिम—"वज़ीर आज़म, अब तो आप पर हमारी हुकूमत के तमाम राज़ अयाँ हो चुके हैं। आपको यह भी मालूम हो चुका है कि मेरे आक़ा ख़लीफ़ा वली ने मुझे फिर इरशाद फ़रमाया है कि जैसे भी हो, हिन्द से ज़न और जवाहिरात का ज्यादह से ज्यादह ज़ख़ीरा और हासिल करो और उसे बग़दाद भेजो, क्योंकि अब हम अपनी मज़हबी हुकूमत तमाम दुनिया पर क़ायम करने की कोशिश में सफल होने लग गये हैं।"

मंत्रिवर—"यह कौन-सी बड़ी बात है श्रीमन्! भारत स्वर्ण और रत्नों की खान है; रूप की भी यहाँ कमी नहीं। अभी तो श्रीमान् ने केवल एक प्रान्त में पैर रखा है। सिन्धु

तो हिन्द का शतांश भी नहीं है। पूर्व की ओर बढ़िये, आप देखेंगे कि उधर के एक-एक सामान्य शासक के पास इतना धन है जितना कि अब तक लगभग सारे सिन्धु की विजय प्राप्त करके भी आप नहीं प्राप्त कर सके हैं। इस अत्यन्त प्राचीन देश में अपार और अनन्त सम्पत्ति प्रच्छन्न रूप में पड़ी है और रूप की सारी भावना तो मानो भगवान ने भारतवर्ष ही की रमणियों में भर दी है। यहाँ की महिलाएँ आशा, करुणा, क्षमा, शान्ति, प्रेरणा, तितिक्षा, सहिष्णुता और अहिंसा की साक्षात् प्रतिमाएं हैं। इन दोनों ही रत्न-राशियों को प्राप्त करना सहज है। जैसा आप सिन्धु में देख चुके हैं, वही अवस्था सारे भारतवर्ष का है। यहाँ के लोग—विशेषतया राजा सदा आनन्द-उपभोग में मग्न रहते हैं। युद्ध-कला का उनको तनिक भी ज्ञान नहीं है, और आपकी नाफ्ताधारी सेना तो एक ही वर्ष के अन्दर इस सारे महादेश पर विजय प्राप्त कर ले सकती है। इस प्रकार, आप शासन और मजहब, दोनों का प्रचार इस देश में बिना किसी अड़चन के जमा सकते हैं। और मैं, यथाशक्ति उसमें सहायता करता ही रहूँगा।"

मुहम्मद-बिन-क़ासिम, अपने सलाहकार और वजीर शशिकरके—जिनका नाम अब उसने शरीफ़ुद्दीन रख दिया था—इस परामर्श से बहुत प्रसन्न हुआ और उसने मंत्रिवर

के सुझाव पर एक ऐसा पत्र भारत के सभी तत्कालीन शासकों के पास भेज दिया जिसमें उनसे इस्लाम मजहब कबूल करने, अन्यथा राज्य की आधी आय जज़िया-करके रूप में भेंट करके अधीनता स्वीकार करने की माँग की गई थी। साथ ही यह भी लिख दिया गया, कि यदि उन्होंने यह प्रस्ताव स्वीकार न किया, तो अरब-सेनाएँ उनके राज्य का विध्वंस कर देंगी।

इस बीच, मुहम्मद-बिन-क़ासिम को खलीफा वली का जो पत्र मिला, उसमें उसकी इस्लाम और खलीफ़ा की की गई सेवाओं की भूरि-भूरि प्रशंसा की गई थी और उसे यह आदेश किया गया था, कि अब वह छोटे-मोटे स्थानों पर क़ब्जा करने और टिकने के बदले केवल मुलतान-जैसे प्रमुख नगरों पर ही अधिकार करने का प्रयत्न करे, क्योंकि बड़े स्थानों से न केवल रत्न-धन की प्रचुर राशि मिलती है, प्रत्युत् इस कोटि के मनुष्य भी मिल जाते हैं, जो स्वार्थवश नये शासक की सहायता करने में कुछ भी नहीं हिचकिचाते। इस पत्र में यह भी कहा गया था, कि अलोर और मुलतान की और भी खोज की जाय, क्योंकि यहाँ और भी कितने ही छुपे हुए राज्यकोष मिल सकते हैं। जहाँ के एक मन्दिर से इतना धन प्राप्त हो सकता है, वहाँ के राजा के पास कितने स्थानों पर धन संग्रहीत होगा, यह सहज ही अनुमेय है।

इस प्रकार, धन मिलता गया तो अल्लाह्-ताला इस्लाम को चीन तक फैला देंगे।

परन्तु बेगदाद का उपर्युक्त आशय का पत्र मिलने के पहले ही, मुहम्मद-बिन-क़ासिम ने स्वयं तदनुसार कार्य करना आरम्भ कर दिया था। देवल, राजोर, अलोर, निरुन, लाखा, लोहाना, बहरूर, ढालिया और सम्मा के दुर्गों एवं गढ़ियों के अतिरिक्त और भी कितने ही छोटे-मोटे स्थानों पर अधिकार कर लेने तथा बुधपुर, मैकनान, अस्कलन्द, पूबिया, चचपुर, सिक्का, मुलतान, रावर, करूर, कुम्बा तथा ब्राह्मणपुर आदि प्रमुख नगरों पर अपना सिक्का जमा लेने के अनन्तर, मुहम्मद-बिन-क़ासिम ने भारतवर्ष के भीतरी भाग में प्रवेश करने की भूमिका मंत्रिवर के परामर्श से तैयार कर ली थी। उसने जो पत्र आर्यावर्त्त के विभिन्न राजवंशों को भेजे थे, उनमें से अधिकांश के उत्तर भी मंत्रिवर शशिकर ने कृत्रिम रूप से तैयार करके अपने विशिष्ट सन्देश-वाहकों द्वारा मुहम्मद-बिन-कासिम के दरबार में भिजवा दिये। उन उत्तरों में, कान्यकुब्ज[1] के अधिपति महाराजा हरचन्दराय का उत्तर ऐसा था जिसने मुहम्मद-बिन-क़ासिम के विजय-दर्प को गहरी ठेस पहुँचाई। निरन्तर सफल व्यक्ति के लिये विरोध असह्य हो जाता है, और

१ वर्त्तमान कन्नौज।

चुनौती तो उसके लिये अप्रतिष्ठा की चरम सीमा बन जाती है—विशेषकर उस अवस्था में जबकि सफल व्यक्ति का मन निरन्तर सफलताओं के ताँते से आकाश में पहुँचा होता है। कुछ कृत्रिम राजाओं के शरण आने का नाटक भी मंत्रिवर ने इस सफलता के साथ रचा, कि उससे मुहम्मद-बिन-क़ासिम का उत्साह आवश्यकता से अधिक बढ़ गया, और उसको इस बात का बड़ा गर्व हो गया कि जिसका सन्देश-मात्र प्राप्त करके अनेक राजा डरकर वशवर्त्ती हो जाते हैं, उसको प्रत्यक्ष देख लेने पर तो कदाचित् बड़े से बड़ा शासक भी अपना मस्तक झुका देगा।

नवयुवक मुहम्मद-बिन-क़ासिम विजयोल्लास से इतना फूल चुका था, कि उसने मंत्रिवर के परामर्श और कार्यवाही में किसी भी प्रकार के छल-छिद्र का आभास नहीं पाया। अब उसने अपने सर्वप्रधान सैनिक-सहायक अबू हाकिम शैबानी की देख-रेख में दस सहस्र घुड़सवारों की कुशल सेना कान्यकुब्ज की सीमा की ओर भेज दी। यह सेना बड़े वेग से आगे बढ़ी और कई दिनों की कूच के पश्चात् उसने उधाफार नामक स्थान पर डेरा डाल दिया।

अब हाकिम शैबानी ने मुहम्मद-बिन-क़ासिम की ओर से एक दूसरा सन्देश भी कान्यकुब्ज-नरेश के पास भेजा, जिसमें यह स्पष्ट लिखा गया था कि अब अरब-सेनाएं

उसकी सीमा पर आ पहुँची हैं, इसलिये, अगर वह अपने जान-माल की खैर चाहते हैं, तो इस्लाम कबूल करके भाई-चारे का बर्ताव हासिल करें, वरना जज़िया-कर अदा करके अरब-शासक की अधीनता कबूल करलें। दोनों में से कोई बात मंजूर न हो तो अरब-सैनिकों के हाथों वे अपना विनाश कराने को तैयार हो जायँ।

बकर नामक जो राजदूत मुहम्मद-बिन-क़ासिम का सन्देश लेकर कन्नौज गया वह बेचारा मन ही मन डर रहा था कि कदाचित् अब वह फिर अपने बाल-बच्चों का मुँह न देख सकेगा, क्योंकि वह जानता था, कि चुनौती-भरे हुए—अपमानजनक पत्र को पाकर आर्य-शासक क्रोधोन्मत्त हो सकता है। पर जब उसने कन्नौज के दरबार में पहुँच कर महाराज हरचैन्दराय के निकट अपने स्वामी का सन्देश उपस्थित किया तो महाराज हरचन्दराय उसे पढ़कर कुछ भी उद्विग्न नहीं हुए और अपनी परम्परागत आर्य-प्रणाली के अनुसार, मंत्रियों के परामर्श से उन्होंने एक उत्तर तैयार कराया जिसका सारांश इस प्रकार था :—

"हे अरब सैन्याधिपति! हमारा राजवंश लगभग सोलह सौ वर्ष से इस प्रदेश का निरन्तर शासन करता आ रहा है। हमारी राज्य-सीमा में आज तक कोई शत्रु नहीं घुस सका। हम यदि आप-जैसे तुच्छ और नगण्य अरब से भय खाकर

आत्म-समर्पण करें तो अपने वंश को कलंकित कर देंगे। आपके सभी प्रस्ताव व्यर्थ हैं। दूत अवध्य है और उसे बन्दी बनाना भी हमारे धर्म में नहीं है, अन्यथा, न तो यह दूत वापस जाता और न पत्र का उत्तर ही। आपको जान लेना चाहिए कि हम आर्य-शासक परस्पर लड़ते भी हैं तो अपनी युद्ध-शक्ति बनाये रखने और आप-जैसे पापियों को यमलोक भेजने के लिये तैयारी करने के निमित्त ही।"[1]

कान्यकुब्जाधिपति का यह पत्र जब शैबानी को मिला तो इस उत्तर की सूचना उसने घुड़सवारों द्वारा मुहम्मद-बिन-क़ासिम को भेज दी, क्योंकि वह अभी तक उधाक़ार नहीं पहुँचा था, और उसके पहुँचने में अब भी देरी थी। बिना उसकी आज्ञा अब हाकिम शैबानी अपनी सेनाओं को और आगे नहीं बढ़ा सकता था। उसके साथ मोक-बिसाया आदि वे स्थानीय सामन्त थे जिनके साथ क्षत्रिय राजा अच्छा व्यवहार नहीं करते थे और जो आर्य-पक्ष का परित्याग कर विदेशी और विधर्मी नवागन्तुक की सेवा करने में ही अपना ऐहिक लाभ देखते थे। इस श्रेणी के सामन्त अपनी जातीय सेनाओं-सहित मुहम्मद-बिन-क़ासिम से आ मिले थे और उन्होंने इस देश के भीतरी भेद और

---

1. चचनामा इलियट कृत अंग्रेज़ी अनुवाद।

दुर्बलताएं अरब-सेनापति को बतलाने में कोई कसर नहीं रखी थी।

मुहम्मद-बिन-क़ासिम को महाराज हरचन्दराय के उत्तर की सूचना मिली तो जैसे उसकी अहम्मन्यता को सौगुनी ठेस लगी, क्योंकि वह तो यह कल्पना करता हुआ आ रहा था कि कान्यकुब्ज-नरेश अब उसकी अवज्ञा या उपेक्षा न करके तुरन्त आत्मसमर्पण कर देगा। इधर मंत्रिवर शशिकर ने स्तुति, आदर और कृत्रिम प्रदर्शनों-द्वारा उसकी अहंभावना इतनी बढ़ा दी थी कि अब वह उस ऊँचे स्तर से नीचे उतर कर ठण्डे हृदय से किसी बात पर विचार करने को तैयार न था। यही कारण था, कि जब कन्नौज-नरेश का उत्तर प्रधान सेनापति शैबानी-द्वारा प्रेषित दूत ने उसकी सेवा में उपस्थित किया, तो पढ़ते ही उसके तेवर चढ़ गये। उसके साथ उस समय केवल पाँच सौ घुड़-सवार थे और कितने ही अरब और सिन्धी सरदार। पीछे से और सेना भेजने का सन्देश शैबानी को भेजकर उसने सबको आज्ञा दी कि वे उसका अनुसरण करें, और यह कहते हुए अपने घोड़े को एड़ लगा दी।

× × ×

इतने दिनों बाद मंत्रिवर शशिकर को यह अवसर मिला, जब मुहम्मद-बिन-क़ासिम ने उन्हें स्थानीय कार-भार सौंप

कर स्वयं कन्नौज पर चढ़ाई करने के लिए प्रस्थान किया। मंत्रिवर ने अविलम्ब सभी दुर्गों और गढ़ियों के रक्षक अधिकारियों के नाम मुहम्मद-बिन-कासिम के कृत्रिम हस्ताक्षर-युक्त पत्र भेज दिये जिसमें लिखा था कि अब चूंकि सिन्धु पर हमारा शासन पूर्णतः स्थापित हो गया है और इस प्रदेश के समस्त शत्रुओं का उन्मूलन हो जाने के कारण किसी के सिर उठाने की आशंका नहीं रह गई है, इसलिये, समस्त बन्दी सामन्तों और ठिकानेदारों को अविलम्ब मुक्त कर दिया जाय और अगला आदेश प्राप्त किये बिना कोई भी गढ़ाधिपति न तो अपने केन्द्र से बाहर जाय और न अपनी सेना को कहीं दूर भेजे।

मंत्रिवर शशिकर ने अपने एक गुप्त दूत को सन्देश देकर बगदाद भेजा, जो अपने पाँच रक्षक साथियों सहित वेगवान साँड़नियों पर तुरन्त बगदाद के लिये प्रस्थान कर गया। मंत्रिवर का यह दूत इस तेजीके साथ बगदाद गया कि मुहम्मद-बिन-क़ासिम के पहले भेजे हुए सन्देश-वाहकों के, जो मुलतान-विजय और उससे प्राप्त विपुल स्वर्ण रत्न-राशि की प्राप्ति का शुभ सन्देश लेकर गये थे, पीछे-पीछे ही वह भी खलीफ़ा की राजधानी में पहुँच गया। इन उष्ट्रारोहियों ने अपनी ऊँटनियाँ सराय में छोड़दीं और मन्त्रिवर का गुप्त पत्र बड़ी ही युक्ति और अर्थ-व्यय के द्वारा महामाया तक

पहुँचा दिया। उस पत्र में आदेश था, कि महाराजकुमारियों को म्लेच्छाधिपति-द्वारा कौमार्य-भ्रष्ट होने का संकट आ जाने पर क्या-क्या कहना और करना चाहिये।

इधर मंत्रिवर ने दुर्गों और गढ़ियों से अरब-अधिकारियों द्वारा मुक्त किये गये सामन्तों और ठिकानेदारों को अपने सन्देशों-द्वारा बुलाकर एक गुप्त स्थान पर एकत्रित करके समझाया, कि अब भी वे किस प्रकार म्लेच्छों का निकन्दन करने के लिए, अपने देश से बाहर भेजे जाते हुए उस समस्त स्वर्ण और रत्नराशि को, जो मुलतान से लूटी गई है, और ऊँटों पर लाद कर बगदाद के लिये प्रस्थान कर चुकी है, रोक सकते हैं। मंत्रिवर ने आर्य-सामन्तों को यह भी समझा दिया कि इस धन के साथ कुशल अरब-सेना और तीरन्दाजों की टोली भी है। उससे लड़ कर और उसे पराजित करने के पश्चात् धन प्राप्त करना बहुत कठिन है। इसलिये, हमको अपना संगठन पूर्णतः दृढ़ करके और इस भावना से, कि हम अपनी इस विशाल सम्पत्ति को विधर्मियों और विदेशियों की सीमा में प्रवेश करने के पहले ही छीन लेंगे, इस क़ाफ़िले पर उस समय आक्रमण करना चाहिये जब कि वह किसी पड़ाव पर रात्रि को विश्राम ले रहा हो। कार्यक्रम के अनुसार यह रत्नराशि अमुक तिथि को मकराना के आस-पास होगी और वहीं भारत के क्षात्र-

धर्म को अपनी समस्त सामूहिक शक्ति लगा कर यह दिखा देना होगा कि उसकी सहस्रों वर्ष की परम्परागत अर्जित रत्न और स्वर्ण राशि को म्लेच्छ इतनी आसानी से भारतीय सीमा के बाहर नहीं ले जा सकते।

सभी दुर्गों और गढ़ियों से छूटे हुए राजपूत शूर-सामन्तों और योद्धाओं को जब यह मालूम हुआ कि उनका छुटकारा मुहम्मद-बिन-क़ासिम की दया से नहीं, प्रत्युक मंत्रिवर शशिकर के युक्तिपूर्ण कृत्रिम पत्र-प्रेषण के फलस्वरूप हुआ है और अब एक बार फिर उन्हें यह सुअवसर प्राप्त हो रहा है कि वे राजपूतनियों के दूध का परिचय दे सकें, तो उन्होंने अपने संगठन को सुदृढ़ बना कर प्रबल सैन्य-दल और भार-वाहक साथ ले लिये और निश्चित तिथि पर मकराना पहुँच कर उसके पार्श्ववर्त्ती जंगलों से जगह-जगह गुप्तचर भेज कर अरब-क़ाफ़िले का पता लगा लिया, और यह भी भेद पा लिया, कि मकराना से दो योजन पहले ही, अमुक तिथि को, अमुक स्थान पर, वह क़ाफ़िला डेरा डालेगा। चूँकि इस स्थान के आस-पास बहुत दूर तक सघन बन है इसलिये नैश आक्रमण के पश्चात्, प्राप्त धन को उस वन्य प्रदेश में इधर-उधर ले जाने में बड़ी सुगमता होगी।

इस नवसंगठित दल का नेतृत्त्व सुजानसिंह नामक एक परम मेधावी और प्रचंड धीर-वीर राजपूत को दिया गया

था। उसने एक सहस्त्र ऐसे राजपूतों का दल तैयार किया, जिनका लड़ाई से कोई सम्बन्ध नहीं था और जो केवल भार-वाहन के कार्य में अत्यन्त सिद्धहस्त थे। उन्होंने जंगल में अपने ऊँट भी तैयार कर रखे थे, जहाँ यह रत्नराशि पहुँचाई जाकर उन पर लाद दी जाय इस प्रकार भारत से बाहर जाती हुई सम्पत्ति का मुख मोड़ कर उसे पुनः स्वदेश की ओर लाये जाने का आयोजन कर लिया गया।

निश्चित तिथि को मकराना से आठ कोस पहले आने-वाले उस पड़ाव पर रत्नराशि के रक्षक-दल ने बीसलपुर ग्राम के पास डेरा डाला। सन्ध्या हो चुकी थी। पड़ाव पर खाने-पीने और विश्राम करने की सुविधायें तो थीं ही, पार्श्व-वर्त्ती गाँव में देशी मद्य की बहुत बड़ी दूकान भी थी। थके हुए अरब-सैनिकों ने खाने-पीने के पश्चात् गाँव में जाकर मद्य का भंडार भी रिक्त किया और लगभग अर्द्ध रात्रि के समय वे सोने की तैयारी करने लगे। समस्त स्वर्ण और रत्न-राशि को सुरक्षा की दृष्टि से बीच में रख कर उसके चारों ओर सैनिकों ने अपनी शय्या लगाई। कुछ खड्गधारी सैनिक पहरेदार के रूप में रात भर जागने के लिये भी नियुक्त कर दिये गये। कुछ सैनिक मनोरंजन की बातें और गप-शप करने में लग गये। कुछ ने मशालों के धुँधले प्रकाश में शत-रंज खेलने में मन लगाया। पर थके हुए और मद्य-सेवी

सैनिकों का अधिक देर तक जागना सम्भव न था। आधी रात्रि से अधिक व्यतीत हो जाने पर प्रकृति के स्वाभाविक नियमानुसार सभी निद्रादेवी की गोद में निमग्न हो गये। पहरेदार भी न्यूनाधिक रूप में तंद्राभिभूत हो गये।

आधी रात व्यतीत हुए कोई दो घटिका का समय हो चुका था, कि पहरेदारों में जो अधिक सजग थे और अपनी कर्त्तव्य-चेतना-द्वारा आगन्तुक निद्रा के झोंकों का बीच-बीच में निवारण करते जाने का प्रयत्न कर रहे थे, उन्होंने, अपनी मंडली के बीच में जलनेवाले क्षीण प्रकाश के सहारे यह देखा कि उनकी टोली तो एक वृहद् वृत्ताकार सशस्त्र सैनिकों के दल-द्वारा घेर ली गई है।

पहरेदारों ने चिल्ला कर अपने दल को इस स्थिति की सूचना देने का प्रयत्न किया, पर उसी क्षण केवल उनके सिर धड़ से अलग हो गये प्रत्युत उनके सभी सुप्त सैनिक बिना किसी विरोध के यमपुरी को पहुँचने लगे।

इस प्रकार थोड़ी ही देर में जब एक ओर की समस्त शय्या रिक्त हो गई तो आर्य भार-वाहकों ने अपना कार्य आरम्भ कर दिया। इस आकस्मिक आक्रमण से मद्य और निद्रा तथा तन्द्रा से जो अरब-सैनिक जागरित हुए वे हक्के-बक्के- से हो गये और कुछ समय तक तो वे यह भी न समझ पाये कि यह हो क्या रहा है। पर शीघ्र ही उन्होंने अपनी

तलवारें और तीर-कमान सँभाल लिये। अँधेरे में तीर-कमान का तो कोई विशेष उपयोग न हो सका, क्योंकि मध्यवर्ती कृत्रिम प्रकाश बहुत थोड़ी दूर तक जा सकता था और तीरों का प्रहार सदैव दूरवर्त्ती लक्ष्य पर हुआ करता है, परन्तु खड्ग-धारी अरब-रक्षकों ने अँधेरे में भी राजपूतों से जम कर लोहा लिया और तब तक लड़ते रहे, जब तक धराशायी नहीं हो गये। राजपूतों ने इन अरब-सैनिकों को यह अवसर ही नहीं दिया कि वे घूम कर यह भी देख सकें कि उनकी रक्षित स्वर्ण और रत्न-राशि अपने स्थान पर है भी या नहीं। वास्तव में, अपनी पहली पराजयों से चिढ़े हुए राजपूतों ने, इस बार यह प्रण शपथपूर्वक खड्ग-युक्त भुजाओं को उठा-उठा कर किया था, कि हम अपने इस प्रयत्न में, या तो मिट जायँगे या भारत-वसुन्धरा की इस चिर-संचित स्वर्ण-रत्नराशि को भारत ही में रोक रखने में सफल होंगे।

जब रात्रि केवल दो घटिका शेष रही और आधे से अधिक अरब-सैनिक और रक्षक मौत के घाट उतर चुके तथा उनके द्वारा रक्षित सारी सम्पत्ति वन-मार्ग से बहुत दूर जा पहुँची तो शेष सैनिकों ने अपना विरोध बन्द कर दिया। राज-पूत-सैनिकों ने भी अपना प्रयत्न बन्द किया। राजपूत सैनिकों में बहुत थोड़े लोग इस स्थल पर काम आये। इसके कारण अनेक थे—एक तो यह कि इस आर्य-दल में केवल चुने हुए

सैनिक थे, दूसरे उनकी संख्या अरब-सैनिकों से बहुत ही अधिक थी और तीसरा बड़ा कारण यह भी था कि दिन भर के थके-माँदे अरब-सैनिक विश्राम कर रहे थे। उन्हें सँभल कर लड़ने का अवसर इसलिये भी नहीं मिला कि उनमें से अधिकांश मद्य के नशे में चूर थे। विजयी राजपूतों ने इस प्रकार अरबों को गहरी पराजय देने के अनन्तर प्रभात होने के पहले ही अपनी सेना पुनः वन-प्रदेश में बिखेर दी और ऐसा करने के पहले, सबको आदेश दिया गया कि वे अमुक स्थान पर, जहाँ स्वर्णराशि पहुँचाई गई है, आकर एकत्रित हों।

अरबों में जो बचे उन्हें पार्श्ववर्त्ती वन्य-प्रदेश का कोई ज्ञान न था, इसलिए वे चाहते भी तो आर्य-सैनिकों की टोह न पा सकते थे।

: ८ :

पुनर्वास

ख़लीफा वली के दरबार में एक बड़े वृद्ध मौलवी भी थे। वे बहुत कम बोलते थे, पर जब बोलने लगते तो दो टूक बातें करते थे। उस समय उन्हें यह संकोच न होता था कि वे ख़लीफा से कोई बात कह रहे हैं या जन सामान्य से। उनका जीवन बहुत सादा था और वे धार्मिक विचारों से इस्लाम को मानते हुए भी उसकी तत्कालीन प्रवृत्तियों में बह नहीं गये थे। उनकी विचारधारा विश्वबन्धुत्व की ओर

थी, वरन् यह कहना चाहिए कि वे मुसलमानों में पहले सूफ़ी थे जो सम्प्रदायों और देशों के भेद-भाव के विरोधी थे। ख़लीफ़ा ने सिन्धु से पहली लूटों में आये हुए समस्त स्वर्ण-रत्नादिक की परिगणना कराई, तो उसे ज्ञात हुआ कि उसके पास इतना अर्थ-संग्रह हो चुका है जितना तत्कालीन सभी इस्लामी राज्यों के पास मिलाकर भी न होगा। उसने इस सम्पत्ति का एक क्षुद्रांश अपने अधिकारियों और कर्मचारियों की विद्वेष-भावना को दबाने के लिये उन्हें बाँट भी दिया। इसी प्रकार महाराजकुमारियों—सूर्यदेवी और परिमलदेवी के अतिरिक्त राजघराने की अन्य कुमारियों और महिलाओं को अपने तुर्क-अधिकारियों, दरबारियों और सेवकों में तोहफे के रूप में बाँट दिया। अब हरम में केवल महाराजकुमारियों और उनकी कुछ विशिष्ट सेवकाएँ, जिनमें छद्मवेशिनी महामाया प्रमुख थीं, रह गई थीं। ख़लीफ़ा ने गुप्त निधि की भाँति, उन्हें अपने ही अधिकार में गुप्त रूप में रखा और सबकी दृष्टि से बचाया था। राज-काज करनेवाले उच्चाधिकारियों और वज़ीर तथा सिपहसालार तक को यह पता न लग सका कि उन महाराजकुमारियों का क्या होने जा रहा है। उच्चकोटि के सरदारों में तरह-तरह के अटकल लगाये जाते थे। कोई कहता, ख़लीफ़ा अपने धन की तरह इन हूरों को भी छाती पर लादे जायगा। दूसरे

कहते, खलीफा को बहिश्त तो मिलने से रहा, क्योंकि उसके काम ही ऐसे नहीं हैं, इसलिए बहिश्त में मिलनेवाली हूरों की साध वह यहीं पूरी कर रहा है। कुछ लोग यह भी कहते कि खलीफा उन महाराजकुमारियों के बारे में इलहाम का इन्तजार कर रहा है। कुछ इने-गिने ऊँचे दर्जे के लोग यह भी कहते सुने जाते थे कि इन शाही खानदान की लड़कियों को तो बेदाग़ फिर हिन्द लौटा देना चाहिये।

जिन सूफ़ी मौलाना के सम्बन्ध में हम ऊपर बता आये हैं,वे मौजी आदमी थे। दरबार में भी कभी-कभी ही जाते थे। इस अवसर पर जब एक दिन वे दरबार गये तो खलीफ़ा ने उन्हें पाँच अशरफ़ियाँ भेंट कीं और कहा—"यह हिन्द पर हमारी फ़तह की यादगार है मौलाना। इसे कुबूल कीजिये और दुआ कीजिये कि जहाँ अभी तक हम सिर्फ एक सूबे पर क़ाबिज़ हो पाये हैं, वहाँ जल्दी ही सारे हिन्द के हाकिम बन जायँ।"

मौलवी—"मुझे आपकी यह नज़र नहीं चाहिये और मैं इसे तब तक कुबूल नहीं कर सकता, जब तक आप दोनों शाही लड़कियों को बेदाग़ और बा-इज्जत उनके भाई के पास वापस हिन्द न भेज देंगे। लड़ना, हुकूमत क़ायम करना और जर, जमीन पर क़ब्जा कर लेना बादशाहों के लिये जायज़ है और आप, चूँकि मजहबी पेशवा न रहकर

दुनियावी बादशाह भी बन रहे हैं, लिहाज़ा हुकूमत क़ायम करना, ज़र व ज़मीन पर क़ब्ज़ा कर लेना तक तो जायज़ कहा जा सकता है, मगर किसी भी मुल्की या ग़ैर-मुल्की हम-मज़हबी या ग़ैर-मज़हबी बादशाह की ख़वातीन को अपने हरम में लाकर रखना, दीन व दुनिया दोनों के उसूलों के ख़िलाफ़ है और खुदाई अहकाम की तौहीन भी है। ऐसी हालत में मेरी यह राय है कि आप यह धन-दौलत भले ही हज़म कर लें और तमाम हिन्द के हाकिम भले ही बन जायँ, पर इन शाही लड़कियों को अपने पास न रखकर वापस उनके वतन को भेज दें।"

ख़लीफ़ा—"आप जो कुछ फ़रमा रहे हैं वह किसी मौलवी या हाफ़िज़ के लिए तो ठीक कहा जा सकता है, मगर जो मज़हब के साथ हुकूमत की बागडोर भी अपने हाथ में सँभाले हुए है, उसके लिए यह बातें जायज़ नहीं कही जा सकतीं। मैं इन लड़कियों को ताज़िन्दगी अपने हरम से बाहर नहीं होने दूँगा। दुनिया में खूबसूरती इसलिए नहीं बनाई गई कि उसकी बेक़द्री की जाय। शाही ख़ानदान की लड़कियाँ मेरे हरम में नहीं तो क्या किसी फ़क़ीर की झोंपड़ी में रहेंगी। रही उनके वापस भेजे जाने की बात, सो बिल्कुल ग़ैर-मौज़ूँ इसलिए है कि उनके बाप का सर तो कट कर यहाँ आ चुका है और इनका भाई दारुलसल्तनत से भागकर

दूसरों की मदद के लिए दर-दर भटक रहा है। ऐसी हालत में इन लड़कियों पर मेरे सिवा और किसी का साया नहीं रह गया है। मैं फातेह हूँ, इसलिए मेरा फर्ज है कि इन शाही लड़कियों को उसी ऊँचे पैमाने की ज़िंदगी बसर करने के लिए सब सामन मुहय्या करूँ जिस पैमाने की ज़िन्दगी ये हिन्द में बसर कर रही थीं।"

मौलवी कुछ न बोले और पाँचों अशर्फियाँ वहीं फर्श पर छोड़ चुपचाप वहाँ से चले गये। दूसरे दिन नजूमियों की सलाह से खलीफ़ा वली ने दोनों महाराजकुमारियों को कनीजों-द्वारा हरम से अपने शयन-कक्ष में बुलवाया। महामाया ने दोनों को अच्छी तरह समझा-बुझाकर बाँदियों के साथ भेज दिया। खलीफ़ा ने एक द्विभाषिणी बाँदी द्वारा उन लड़कियों से पूछा कि समवयस्का-सी दीखनेवाली उन दोनों में बड़ी कौन है ? जब उसे ज्ञात हो गया कि सूर्यदेवी बड़ी है तो उसने यह कहकर परिमलदेवी को बाँदियों के साथ हरम में वापस भेज दिया कि वह उसे फिर कभी बुलायेगा। द्विभाषिणी ने बड़ी लड़की का नाम खलीफा को बताने के पश्चात् शयनकक्ष से विदा ले ली।

खलीफ़ा ने इशारे से सूर्यदेवी को अपने निकट बुलाया और जब वह थोड़ी दूर पर झुक कर बैठ गई तो उसने उसे घूँघट उठाने को कहा। सूर्यदेवी के चेहरे का तेज देखकर

खलीफ़ा चकित हो गया और जब उस पवित्र कन्या की तीव्र दृष्टि अधेड़ खलीफ़ा पर पड़ी तो क्षण भर के लिए वह सहम-सा गया। सूर्यदेवी का अद्भुत रूप देखकर खलीफ़ा पहले तो आतंकित हो उठा, पर फिर उसके लावण्य और निर्भीक चितवन पर विमुग्ध हो उसका सान्निध्य प्राप्त करने को अधीर हो उठा। उसने अपना हाथ सूर्यदेवी की ओर बढ़ाया ही था कि वह उठ खड़ी हुई और अत्यन्त विनम्रता से खलीफ़ा के सामने झुक कर अपनी प्रार्थना सुन लेने के लिए अनुरोध किया। खलीफ़ा ने फिर द्विभाषिणी को बुला लिया और सूर्यदेवी का आरम्भिक अभिप्राय समझ लेने के बाद, उसे अपनी प्रार्थना सुनाने का आदेश किया।

"श्रीमन्," सूर्यदेवी ने विनम्रतापूर्वक कोकिल-विनिन्दित स्वर में दुःख और कातरतापूर्वक कहा—"श्रीमान् की आयु बड़ी हो; पर सत्य बात तो यह है कि हम दोनों ही बहनें अब श्रीमान् की सेवा करने-योग्य नहीं रह गई हैं, क्योंकि हमें श्रीमान् के सेवक मुहम्मद-बिन-क़ासिम ने तीन दिन तक अपने पास रखने के पश्चात् श्रीमान् की सेवा में भेजा है। कदाचित ऐसी प्रथा श्रीमान् के दरबार में हो, पर हमारे देश में तो राजकन्या का स्पर्श राजसेवक नहीं कर सकता, और यदि कर ले तो वह अभागिनी कन्या फिर राजपुरुष के योग्य नहीं रह जाती।"

खलीफ़ा प्रेममार्ग के इस व्याघात से तड़प उठा, जैसे किसी ने सोये हुए सिंह पर आघात कर दिया हो। उसने द्विभाषिणी को यह बात गुप्त रखने का आदेश कर दिया और सूर्यदेवी को हरम में लौटा दिया।

खलीफ़ा ने काग़ज़-क़लमदान मँगाकर उसी क्षण मुहम्मद-बिन-क़ासिम को अपने हाथ से एक अत्यावश्यक पत्र लिखा। पत्र क्या, उसे राजाज्ञा कहना अधिक उपयुक्त होगा। वह इस प्रकार स्पष्ट लिखा गया था—

"मुहम्मद-बिन-क़ासिम!

"तुम जहाँ भी और जिस हालत में भी हो, यह ख़त पाते ही जल्द-से-जल्द बग़दाद वापस आ जाओ। हिन्द से तुम्हारी रवानगी ख़ुफ़िया तौर पर होनी चाहिए, जिससे वहाँवालों को यह पता न चल जाय कि तुम यहाँ आ गये हो और वे तुम्हारी ग़ैर-हाज़िरी के मौक़े का फ़ायदा न उठालें।"

ख़लीफ़ा की मुहर लगाने के बाद यह सन्देश लेकर एक विशिष्ट वाहक हिन्द के लिए रवाना हुआ, जिसके साथ कुछ रक्षक सांड़िनी-सवार और अश्वारोही सैनिक भी थे। इस टोली को अभी तक यह पता नहीं था कि मुहम्मद-बिन-क़ासिम ब्राह्मणाबाद से कन्नौज की ओर प्रस्थान कर गया है। इसलिए यह दल पहले ब्राह्मणाबाद गया और वहाँ से यह समाचार पाकर कि मुहम्मद-बिन-क़ासिम उधाफार की ओर

जा चुका है, उसी ओर बढ़ा। सुदूर बग़दाद से आये हुए अश्वारोही, ब्राह्मणाबाद तक पहुँचने में ही थक कर चूर हो चुके थे। अतः अब यह समाचार पाकर कि उनको बहुत दूर आगे तक सन्देश लेकर जाना होगा, उनके तो हाथ-पाँव फूल गये। फिर भी शाही फ़रमान तो रोका नहीं जा सकता था और उस ख़ास आदेशपत्र का महत्त्व भी वे अच्छी तरह जानते थे। बाध्य हो उन्हें उधाफार की ओर बढ़ना ही पड़ा। हाँ, इतना अवश्य हुआ कि उनकी गति पहले से कुछ धीमी पड़ गई।

सन्देश-वाहक की रक्षा-टोली का नायक था मुहम्मद-बिन-क़ासिम का बाल्यकालीन मित्र अबुलहसन, जो उसकी उन्नति के कारण अब मन ही मन उससे घोर ईर्ष्या करने लगा था। उसे ज्ञात था कि जिस प्रकार का सन्देश वह ले जा रहा है उसका क्या परिणाम होनेवाला है। इसीलिए, वह उस सन्देश को कष्ट उठाकर भी शीघ्रातिशीघ्र मुहम्मद-बिन-क़ासिम तक पहुँचाने को समुत्सुक हो रहा था। सिन्धु-स्थित अरब-सेना के अनेक अधिकारी उसके दोस्त रह चुके थे। उनसे मिलने की लालसा भी उसके हृदय में प्रबल हो रही थी।

सन्देश-वाहकों की टोली, जिस समय उधाफार पहुँची, उस समय मुहम्मद-बिन-क़ासिम अपने सैनिकों की सहा-

यता से कन्नौज पर चढ़ाई की योजना पूरी कर चुका था और कूच का नक्कारा अब बजने ही वाला था। अकस्मात ख़लीफ़ा का प्रत्यावर्त्तन-सम्बन्धी सन्देश पाकर वह क्षण-भर के लिए तो किंकर्तव्य-विमूढ़-सा हो गया। फिर कुछ सोच कर दृढ़ हो गया, क्योंकि वह समझता था कि इस समय यदि वह शिथिल हो गया तो सारा बना-बनाया खेल बिगड़ जायगा। उसने अपनी सेना के कई बड़े अधिकारियों से गुप्त मंत्रणा की। इन अधिकारियों में कई तो मुहम्मद-बिन-क़ासिम से स्वाभाविक ईर्ष्या रखते थे और उसे अपने मार्ग का काँटा मानते थे। उसके ख़लीफ़ा द्वारा बग़दाद बुलाये जाने के समाचार से वे अतिशय प्रसन्न हुए और उनके मन में यह बात आई कि अब कन्नौज पर विजय प्राप्त करने को प्रतिष्ठा एवं यश पूर्णतः उन्हें प्राप्त हो सकेगा और लूटी जानेवाली रत्न-राशि का बहुत बड़ा भाग भी वे अपने ही पास रख लेंगे। उन्होंने मुहम्मद-बिन-क़ासिम को आश्वासन दिलाया कि वह कन्नौज की चढ़ाई के बारे में निश्चिन्त होकर बग़दाद जाय, क्योंकि उसके आदेशानुसार पीछे से वे उसका काम पूरा करते रहेंगे। हाँ, सेना में उसकी अनुपस्थिति से हलचल न हो, इसलिये उसका गुप्त रूप में ही प्रस्थान करना वांछनीय होगा। हुआ भी ऐसा ही। मुहम्मद-बिन-क़ासिम को उसकी इच्छानुसार एक काठ के बड़े सन्दूक में, जिसके

ऊर्ध्व एवं निम्न भाग में साँस लेने के लिये बहुत से छेद बनाये गये थे, लिटा दिया गया और यह निश्चय किया गया कि पड़ाव से कुछ दूर चले जाने के बाद इस सन्दूक को सांड़िनी से उतार लिया जायगा और फिर मुहम्मद-बिन-क़ासिम वेश बदल कर घोड़े पर सवार हो सन्देश-वाहक टोली के साथ हो लेगा।

मुहम्मद-बिन-क़ासिम को अधिक सोच-विचार करने का अवसर इसलिये नहीं मिला कि ब्राह्मणाबाद होकर वहाँ पहुँचने में सन्देश-वाहकों को पहले ही बहुत विलम्ब हो चुका था और उसे यह भय था कि ऐसा न हो अधिक विलम्ब होने पर खलीफ़ा उसके सम्बन्ध में विपरीत धारणा बनाले, और कदाचित् खलीफ़ा ने किसी सर्वाधिक महत्त्व-पूर्ण कार्य में उससे कुछ परामर्श लेने के लिये ही इस प्रकार प्रच्छन्न रूप में बुला भेजा है। इसी कारण वह अधिक दूर-दर्शितापूर्ण बातें न सोच सका, और लोगों से अपने प्रस्थान का रहस्य छिपाने के लिए प्रमुख सैन्याधिकारियों को आदेश देकर सन्देशवाहक टोली के नायक और अपने बाल्यकालीन मित्र अबुल हसन से यह कहा कि सैनिक शिविर से कुछ दूर पहुँचाने के पश्चात् सांड़िनी पर से वह सन्दूक आड़े रूप में उतार कर उसे बाहर निकाल लिया जाय। सांड़िनी की पीठ पर एक दूसरा सन्दूक भी उसी आकार और उतने

ही बोझ का सामान भार-संतुलन और लोकभ्रम-निवारण की दृष्टि से लाद दिया गया था। दोनों संदूकों के निम्न और ऊर्ध्व भागों में ऐसे छोटे-छोटे बहुत से छिद्र बनाये गये थे जिनके द्वारा वायु का प्रवेश उनमें हो सकता था और मनुष्य के प्राण जाने का भय नहीं था।

निदान यह टोली, उधाकार से सीधे बगदाद की ओर तत्कालीन विस्तृत राजमार्ग से चल पड़ी। परन्तु 'कुछ दूर' की कौन कहे, दिन भर चलने के बाद भी अबुलहसन ने न तो कहीं सांड़िनी रुकवाई और न पेटिका ही ऊँट से नीचे उतारी। मुहम्मद-बिन-क़ासिम पेटिका के भीतर से बार-बार चिल्लाया कि उसे बाहर निकालो और उसकी आवाज भी क्षीण रूप से उन छिद्रों से बाहर आई; पर सांड़िनीवाहक के कहने पर भी, टोली के नायक अबुलहसन ने यह चीत्कार सुनी अनसुनी कर दी। कुछ साथियों के यह कहने पर भी, कि इस तरह तो मुहम्मद-बिन-क़ासिम थोड़ी ही देर में मर जायगा और ख़लीफ़ा से उसकी बातचीत भी न हो सकेगी, अबुल-हसन ने कहा, कि ख़लीफ़ा ने उसे बातचीत करने के लिए नहीं, वरन् उसकी हरामज़दगी का दंड देने के लिये बुलाया है, जो उसे हिन्दुस्तान की सरहद के अन्दर ही मिल जायगा।

हुआ भी यही। मुहम्मद-बिन-कासिम बार-बार अन्दर

से चिल्लाता रहा, "मुझे बाहर निकालो, मुझे बाहर निकालो! मेरा दम घुट रहा है!" पर अबुलहसन ने उसकी कातर वाणी पर ध्यान नहीं दिया। यह टोली मशाल जला कर एक पहर रात व्यतीत होने तक चलती रही। और जब निश्चित पड़ाव पर पहुँचने के बाद, सब सामान के साथ वह पेटी भी उतारी गई जिसमें कि मुहम्मद-बिन-क़ासिम बन्द किया गया था, तो अबुल-हसन ने उसे सीधा ज़मीन पर रखने के बाद उसके ऊपर अपना लबादा रख दिया, जिससे यदि मुहम्मद-बिन-कासिम में कुछ जीवन अब भी शेष हो तो वह समाप्त हो जाय।

खाना-पीना हो चुकने के बाद, जब अबुलहसन को यह पक्का निश्चय हो गया कि मुहम्मद-बिन-क़ासिम के प्राण-पखेरू उड़ चुके हैं, तो उसने सन्दूक खुलवाया और कुछ सहानुभूतिपूर्ण शब्द कहने के बाद उसकी लाश में मसाला लगवाकर उसे भेड़ की खाल में लिपटवा दिया, जिससे वह रास्ते ही में सड़ न जाय।

अबुलहसन ने रास्ते में सब को समझा दिया कि किस प्रकार मुहम्मद-बिन-क़ासिम ने अपने मालिक के साथ बेवफ़ाई की और खलीफ़ा के लिये भेजी जानेवाली सौग़ात का भोग पहले खुद ही कर लिया। उसने बतलाया, कि ऊँचे से ऊँचे दर्जे के नौकर का ऐसा गुनाह भी किसी भी तरह माफ़ी के

क़ाबिल नहीं होता। खलीफा वली को यह भी शक है, कि इसने, हिन्दुस्तान में कहीं अपना घर-बार बना लिया था और लूट की सारी दौलत बगदाद न भेजकर उसमें से आधी अपने लिये हिन्दुस्तान ही में जमा करता जा रहा था।

पर यह तो हुई उसके बाल्यकालीन मित्र की ईर्ष्या-जन्य बातें। वास्तविकता यह थी, कि मुहम्मद-बिन-क़ासिम पूर्णतः स्वामिभक्त था। हाँ, इस रूप में उसका अपराध अवश्य ही अक्षम्य था कि उसने सिन्धु के सहस्रों घरानों को अनाथ कर दिया था, लाखों विधवाएँ और बच्चे उसके नाम को रोते थे और सहस्रों कुशल योद्धा अपनी इस आकांक्षा को लिये हुए उसके तीरों के शिकार होकर इस संसार से चल बसे थे कि वे रणक्षेत्र में अपना शौर्य शत्रु को लड़कर न दिखा सके। सच तो यह था, कि उसकी नाक़ताधारी टोली हत्यारों का ऐसा दल थी जो सदा गुप्त रूप से तीरों की बौछार करके वीर पुरुषों को उनका रण कौशल दिखाने से वंचित कर देती थी। इन सब की आहों ने महाभीषण और विकराल रूप धारण करके, आज उस अरब-सेनापति को, जिसका नाम सुनकर बड़े-बड़े महाराजा थर्रा उठते थे, एक साढ़े तीन हाथ लम्बे मौत घर में इस तरह ला घेरा कि उसे घोरतम यन्त्रणा-द्वारा तिल-तिल करके अपने प्राणों का परित्याग करना पड़ा।

मुहम्मद-बिन-क़ासिम की महायात्रा कराने और कई दिनों की कष्टकर यात्रा करने के पश्चात् जब यह टोली बगदाद पहुँची तो उसका नायक अबुल हसन तुरन्त ख़लीफ़ा की ख़िदमत में हाज़िर हुआ। ख़लीफ़ा ने उससे पहला प्रश्न यही किया कि मुहम्मद को ज़िन्दा लाये या मुर्दा?

अबुलहसन—"मुहम्मद की रवानगी को एक राज़ रखने की ग़र्ज़ से उसे सन्दूक में बन्द कर दिया गया था और हालांकि उस सन्दूक के ऊपर और नीचे हवा जाने के लिये बहुत-से सूराख़ कर दिये गये थे, फिर भी, रवानगी के कुछ ही देर बाद उसका दम घुट गया। लाश को यहाँ तक महफ़ूज़ लाने के लिये, मैंने उसमें मसाला लगवाकर भेड़ की खाल में लिपटवा दिया था।"

खलीफा ने सन्दूक खुलवाकर देखा—लाश की घोर यन्त्रणा से विकृत मुखाकृति देखकर कदाचित् पत्थर भी पिघल जाता; पर ख़लीफ़ा वली ने सन्तोष की गहरी साँस ली और उस सन्दूक को उठवाकर अपने शयनकक्ष में लिवा ले गया वहाँ दोनों महाराजकुमारियों को हरम से बुलवा कर ख़लीफ़ा ने मुहम्मद-बिन-कासिम की लाश उन्हें दिखाते हुए दुभाषिये-द्वारा कहा:—

"देखो, तुम्हारे शबाब पर बिला हक़ दाग़ लगानेवाले का मैंने कैसा बुरा हाल किया है!"

बड़ी महाराजकुमारी सूर्यदेवी ने तुरन्त उत्तर दिया—"हमारी जवानी पर तो नहीं, पर अपने बुढ़ापे पर श्रीमान ने अवश्य कलंक लगा लिया है। श्रीमान की इस अवस्था के साथ यदि बुद्धि की भी वृद्धि हुई होती तो कितना अच्छा होता। श्रीमान ने धर्माचार्य की गद्दी और सम्राट् के सिंहासन पर बैठकर भी शत्रु और मित्र की बातों को विवेक की कसौटी पर कस कर ही कोई निश्चय करना नहीं सीखा। जब कोई बात पूर्णतः असंदिग्ध हो तभी राजाज्ञा—विशेषतः दंडाज्ञा देना न्याय्य होता है। श्रीमान की आज्ञा से एक निरपराध की हत्या हो गई। यद्यपि, चरित्र के बारे में निरपराध होते हुए भी, यह व्यक्ति एक ऐसा भीषण हत्यारा सिद्ध हुआ है कि जिसके सामान कोई भी पापी आज तक संसार में पैदा नहीं हुआ; परन्तु फिर भी मैंने इस पर झूठा आरोप जिस कारण से लगाया था उस पर श्रीमान को ध्यान देना चाहिये था। इसने मेरे बाप की हत्या की थी और सारी आर्य-जाति को अपदस्थ करने के लिए मेरे पूज्य पिता का शिर काटकर और हम दोनों बहनों को बन्दिनी बनाकर यहाँ भेजा था। मैं राजकन्या हूँ, मैं अपने बाप की हत्या का प्रतिशोध क्यों न लेती? मैं बार-बार 'हत्या' शब्द का प्रयोग इसलिये करती हूँ कि मेरे पिताजी से आपके सैनिकों ने सामने आकर युद्ध नहीं

किया, गुप्त रूप से उन पर तीरों की बौछार की गयी और उन्हें बाध्य हो हाथी से नीचे उतरना पड़ा। ऐसी दशा में न्याय यह था कि उनसे आमने-सामने का युद्ध किया जाता; पर ऐसा न करके उन पर चारों ओर से शस्त्रास्त्र-प्रहार किये गये और फिर उनके धराशायी होते ही अरब गुलामों-द्वारा उनका सिर कटवाया गया। आपके इस सेनापति ने, हमारे आर्य-धर्म का नाश किया, हमारे राज्य की समृद्धि लूटी और राजवंशियों को द्वार-द्वार का भिखारी बना डाला। यह सब बातें मेरे लिये असह्य थीं। हमारी बहनों, दासियों और भाइयों को गुलाम बना दिया। हमारे जिन पवित्र मन्दिरों से आत्मिक शान्ति-प्रदायिनी घंटध्वनि सुनाई देती थी, वहाँ से अब अजान की आवाज आने लगी है। इसने हमारे मन्दिरों की देवमूर्तियों, आभूषणों और निधियों को लूटा और हमारी स्वर्गोपम भूमि पर अपने अलंक की कालिमा फैला दी। पर, इसके इन सब अपराधों के होते हुए भी मैं इस सत्य को नहीं छिपा सकती, कि इसने हम दोनों बहनों के साथ कोई दुर्व्यवहार नहीं किया है। यही नहीं, जहाँ तक मुझे पता है इसने किसी भी स्त्री के सतीत्व का बलात् अपहरण नहीं किया। मैंने शुद्ध प्रतिशोध की भावना से ही इस पर यह आरोप लगाया था कि इसने हम दोनों बहनों को भ्रष्ट किया है।"

ख़लीफ़ा भवें चढ़ाये सुन रहा था।

परिमल देवी—"हमारा उद्देश्य सफल हुआ। हमारे पिता का हत्यारा स्वयं मौत के घाट उतर चुका। हम अपना काम पूरा कर चुकीं। हमने कन्नौज को ही नहीं, सिन्धु के सिवा सारे आर्यावर्त्त को पद्दलित, कलंकित और सम्पत्ति-विहीन होने से बचा लिया। यदि श्रीमान अपना विशेष सन्देश भेजकर इसको यहाँ न बुलाते, तो अब तक सिन्ध के पश्चात् भारत की नाक—कान्यकुब्ज पर भी अरब-सेना का अधिकार हो गया होता। अब श्रीमान हमारे साथ चाहे जो व्यवहार करें, हमें चाहे जो दुःख पहुँचायें, हमारे लिये सब सह्य होगा। हम इस सन्तोष के साथ सुखपूर्वक मृत्यु का आलिंगन कर सकेंगी, कि हमारा प्यारा देश म्लेच्छों का पूर्ण ग्रास बनने से बच गया।"

क्रोध से ख़लीफ़ा के ओठ काँप रहे थे।

सूर्यदेवी—"दो तुच्छ कन्याओं के लिए, श्रीमान को अपने ऐसे प्रमुख सेनापति का विनाश नहीं कराना चाहिये था, जो अरब-खरब का द्रव्य और अगणित रत्न-राशियाँ श्रीमान की सेवा में भेज चुका था और जिसने केवल अपने बाहु-बल और बुद्धि-द्वारा, सिन्धु, के सत्तर राजा-सामन्तों को अपने अधीन कर लिया था, ऐसे स्वामिभक्त सेवक के साथ यह भीषण दुर्व्यवहार कृतघ्नता का द्योतक है।

इतिहास, श्रीमान को इस कुकृत्य के लिये अवश्य ही कलंकित करेगा और...... ।"

खलीफा और कुछ न सुन सका। क्रोध के मारे वह उठ खड़ा हुआ। ओठ चबाकर उसने एक जोर की चीत्कार के साथ अपने अधिकारियों और दास-दासियों को अन्दर बुला लिया और क्रोध से काँपते हुए उसने अर्द्धस्फुट शब्दों में हुक्म दिया—

"इन दोनों ज़हर-बुझी लड़कियों को फौरन यहाँ से ले जाओ....और इन्हें फौरन जिन्दा दीवार में चुनवा दो !"

एक बार तो यह आज्ञा सुनकर सभी स्तब्ध रह गये। पर खलीफा का आदेश टालनेवाला बगदाद में कौन था ? तत्काल भारत की इन दोनों देवोपम पार्थिव सौन्दर्यमयी महाराजकुमारियों को बगदाद के महल की दीवार में चुन देने के लिये गुलाम उन्हें शयन-कक्ष से बाहर ले चले। आगे-आगे जल्लाद और मेमार थे, बीच में गुलामों से घिरी हुई कुसुम-कली के समान कोमल और प्रभात के ओसकण के सदृश पवित्र दोनों महाराजकुमारियाँ, जिनको पत्थरों के बीच जीवित दबाने की कल्पना से भी बगदाद के बहुत से नागरिकों को रोमांच हो आया। इनके पीछे प्रधान राज-कर्मचारियों और प्रमुख नागरिकों का दल था और सबसे पीछे सर्वसाधारण नागरिकों की भारी भीड़ थी।

वह ऐसा करुणाजनक दृश्य था जिसे प्रत्यक्ष देखकर खूंखार अरबों के दिल भी करुणा से पिघल उठे। दरबारी अधिकारी और बगदाद के समस्त नर-नारी इन कोमलांगियों के प्रति की जानेवाली इस घोर पाशविक क्रूरता को देखने से अपनी दृष्टि संकुचित कर रहे थे। कोई खलीफा को मन ही मन गालियाँ दे रहा था, कोई प्रकट अभिशाप। जब दोनों राजकुमारियों को जल्लाद ने ले जाकर दीवार से सटा कर खड़ी किया और मेमारों ने शीघ्रतापूर्वक बड़े-बड़े प्रस्तर-खंड तीनों ओर से जोड़कर उनके कंठ तक पहुँचा दिया, तो कितने ही लोग घटनास्थल से भाग खड़े हुए। वायुमंडल कंठावरोध करने लगा, हवा रुक गई, दिङ्मंडल पीड़ा से कराह उठा, संसार की गति अवरुद्ध-सी हो गई, धरती काँप उठी और आकाश भी रो पड़ा।

पुनरुद्धार

उधाफार के मुहम्मद-बिन-क़ासिम के गुप्त रूप में बगदाद को प्रस्थान करने, मार्ग में उसके प्राणान्त हो जाने और खलीफा-द्वारा दोनों महाराजकुमारियों को दीवार में चुनवा-कर प्राणदण्ड दिये जाने के समाचार न केवल सिन्धु-प्रदेश में, प्रत्युत् सारे भारत में फैल गये। उधाफार के पड़ाव डाले हुए अरब-सैनिकों पर इस समाचार की भीषण प्रतिक्रिया हुई। उनके जो सैनिक अधिकारी अभी कुछ समय पहले

कान्यकुब्ज पर अधिकार कर वहाँ की अतुल स्वर्ण और रत्न-राशि के अधिकारी बन बैठने का स्वप्न देख रहे थे, उन्हें अब चारों ओर से आर्यों के वर्द्धित संगठन के समाचार पाकर अपनी ही रक्षा में सन्देह होने लगा। मंत्रिवर शशिकर के संगठन का जादू सारे भारत में चल गया प्रतीत होता था। घटनाओं का विकास बड़े-बड़े कुटिल राजनीतिज्ञों के पाँसे पलट देता है।

सहायता और संगठन के लिये काश्मीर पहुँचे हुए महाराजकुमार जयसिंह को वहाँ से धन-जन की पर्याप्त सहायता मिल गयी और उन्हें यह ज्ञात हो गया कि अरब-सेना उधाफार पहुँच कर कन्नौज पर चढ़ाई की तैयारी कर चुकी है, और बाद में उन्हें यह भी समाचार मिला कि मुहम्मद-बिन-क़ासिम ख़लीफा के आदेश से बगदाद जा चुका है तथा साथ ही जब उन्हें मंत्रिवर शशिकर का यह सन्देश मिला कि सिन्धु के प्रमुख राजा-सामन्त और ठिकानेदार अरबाधिकृत दुर्गों से मुक्त होकर मुलतान का लुटा धन बगदाद जाने से रोक लेने में सफल हुए हैं, और अब वे सब एक बड़ा संगठन बनाकर उधाफ़ार गयी हुई म्लेच्छ-सेना पर सामूहिक आक्रमण कर, उसे कुचल डालने और इस प्रकार भारत-भूमि को विधर्मियों और विदेशियों से सदा के लिये मुक्त करा लेने के लिए पश्चिम से पूर्व की ओर बढ़ रहे हैं, तो

उन्होंने सोचा कि अब उन्हें भी काश्मीर से प्राप्त सैन्य-सहायता के साथ सीधे उधाफार की ओर बढ़ना चाहिये, क्योंकि योजना के अनुसार पूर्णिमा की सन्ध्या को अरबों पर आक्रमण हो ही जाना चाहिए। पूर्णिमा की रात्रि इस अभियान के लिये इस कारण चुनी गयी कि चन्द्रमा का प्रकाश खड्ग-युद्ध के लिये तो उपयुक्त होगा, पर तीर-प्रहार के लिये पूर्णतः नहीं, क्योंकि चाँदनी रात में भी दूर का लक्ष्य-बेध सरल नहीं होता—ऐसी अवस्था में अरबों को अपनी जिस नाफ्ताधारी टोली पर भरोसा है, वह पूर्णतः नहीं तो अंशतः अवश्य ही अनुपयोगी हो जायगी।

यह सन्देश प्राप्त होते ही महाराजकुमार प्रसन्नता से खिल उठे। इतने दिनों भटकने के अनन्तर काश्मीर-नरेश से पूर्ण सैनिक एवं आर्थिक सहायता प्राप्त करके महाराजकुमार जयसिंह पहले ही बहुत प्रसन्न थे। अब इस सन्देश से उनका साहस सौगुना बढ़ गया। वे सोचने लगे कि अन्ततः इतने दिनों के पश्चात् उन्हें अरबों से आमने-सामने युद्ध करने का सुअवसर प्राप्त होगा और इस प्रकार आर्य-सेना और भारत-वीरों को फिर एक बार अपने कृपाण का बल दिखाने का सुअवसर मिलेगा। उन्होंने इस सुखद कल्पना के साथ उधाफार जानेवाली सड़क पर अपनी सेना डाल दी और उसे ऐसी चाल से चलने का आदेश किया जिससे

पूर्णिमा को गोधूलि-बेला में वह उधाफार पहुँच जायँ।

उधर मंत्रिवर ने कान्यकुब्ज-नरेश को सन्देश भेज दिया कि अरब-सेनानायक बगदाद चला गया है और उसकी सेनाएं उधाफार में नेतृत्व-हीन-सी हो गयी हैं। इसीलिये सारे सिन्धु, काश्मीर और पश्चिमी भारत की आर्य-सेनाएँ और शूर अपने-अपने प्रबल संगठन बना कर तीनों उत्तरीय, पश्चिमीय और दक्षिणीय दिशाओं के अपने-अपने केन्द्रों से प्रस्थान करके पूर्णिमा को सांयकाल गोधुलि-बेला में उधाफार पहुँच रहे हैं। इस अवसर पर श्रीमान कान्यकुब्जाधिपति भी पूर्व-दिशा से इसी समय उधाफार पहुँचने के लिये पर्याप्त सैन्य-दल सहित आ जायँ तो आर्य-जाति के हृदय में चुभा हुआ कलंक का काँटा सरलतापूर्वक निकाला जा सकता है।

कान्यकुब्ज के महाराज हरचन्दराय तो स्वयं भी अपने राज्य पर चढ़ाई करने की इच्छा रखनेवाली अरब-सेनाओं को आर्य-जाति की शूरता दिखाने को समुत्सुक थे, और अरब-सिपहसालार और शैबानी की चुनौती पाने के पश्चात् उन्होंने अपनी समस्त सेनाएँ तैयार कर ली थीं। उन्होंने कोल, भील और सन्थाल-जाति के कुछ चुने हुए धनुर्धर लक्ष्यबेधकों की एक टोली पहले से प्रस्तुत कर ली थी, क्योंकि सिन्धु के पतन के कारणों में एक यही प्रमुख था, कि यवन-सेना के पास तीरन्दाजों की टोली थी और वह रण-

कुशल क्षत्रियों को उनका खड्ग-कौशल दिखाने के पहले ही तीरों की बौछार-द्वारा धराशायी कर देती थी। यह सब बातें मंत्रिवर की कृपा से अब सभी आर्य-शासकों को अवगत हो चुकी थीं। इसी कारण, काश्मीर-नरेश ने महाराजकुमार जयसिंह को जो सैनिक सहायता दी थी उसमें एक धनुर्धारी दल का भी समावेश कर दिया था। पर कान्यकुब्ज-नरेश की तत्सम्बन्धी तैयारी बहुत विस्तृत थी। उनके पास, एक सहस्र लक्ष्यबेधी धनुर्धर हो गये थे। राज्य तथा उसके बाहर के अनेक वन्य एवं पहाड़ी प्रदेशों से धनुर्धारियों के दल के दल आ गये थे और उन्होंने अरब-सेना को उसके ही हथियार का शिकार बना देने का निश्चय पहले ही से कर लिया था। कान्यकुब्जाधिपति इस कल्पना से मन ही मन मुग्ध हो गये कि वह अपनी प्राचीन धनुर्विद्या का पुनरुद्धार कर अब उसका प्रयोग एक अरब-सेना पर कराने जा रहे हैं। मंत्रिवर का सन्देश पाते ही उन्होंने इस स्वर्ण-सुयोग पर अपने चिरकाल-कुंठित समस्त रणकौशलों को दिखाने की पूरी तैयारी कर ली। आगे-आगे धनुर्धारी दल, उसके पीछे पैदल सेना, उसके पश्चात् अश्वारोही दल, और उसके पीछे पैदल सेना तथा उन सब के पश्चात् हाथियों का दल था। इस प्रकार अकेले महाराज हरचन्दराय ने ही अपने पच्चीस सहस्र सैनिक पूर्ण शस्त्रास्त्र और साज-सामान के

साथ इस क्रम से भेजे जिससे गो-धुलि होते ही प्रथम पंक्ति की धनुर्धर टोली, उधाफार के अरब-शिविर के निकट पहुँच कर अपनी कार्यशीलता आरम्भ कर दे।

इस प्रकार, पूर्व से कान्यकुब्ज-नरेश की सेनाएं, उत्तर से महाराजकुमार जयसिंह के तत्त्वावधान में काश्मीर-राज्य की दस सहस्र सेनाएं जिनके आगे-आगे धनुर्धारी दल था, पश्चिम से सिन्धु के समस्त राजा, सामन्तों, ठिकानेदारों और क्षत्रिय वीरों की बीस सहस्र योद्धाओं की सेनाएं पूर्णिमा की सन्ध्या के आगमन के साथ-साथ उधाफार के अरब-सैन्य-शिविर की ओर बढ़ रही थीं। अब रहा दक्षिणीय राजपथ। सो यही एक सम्भावित मार्ग रह गया था जिससे होकर अरब-सेना ब्राह्मणाबाद की ओर भागने का प्रयत्न कर सकती थी। पर मंत्रिवर शशिकर की योजना कच्ची नहीं थी। उन्होंने दक्षिणीय मार्ग को अवरुद्ध करने का कार्य-क्रम पहले ही बना लिया था। यह दिशा तो वास्तव में मंत्रिवर ने अपने लिये सुरक्षित कर ली थी। मंत्रिवर ब्राह्मणाबाद से कई दिन पहले रात्रि के समय अपने कतिपय गुप्तचर साथियों और कुछ आर्य अश्वारोही रक्षकों के साथ चल पड़े थे। उन्हें उनके पूर्व-निर्द्धारित कार्यक्रम के अनुसार मार्ग में निश्चित स्थानों पर सुदूर दक्षिण से आये हुये विभिन्न सहयोगी संस्थानों का सैन्य-दल मिलता गया, जिनमें मध्यभारत की

धनुर्धारी भील-मंडली, जिसे मंत्रिवर ने पहले ही से पूर्ण सैनिक शिक्षण दिलाकर व्यूहात्मक युद्ध के लिये उपयुक्त बना लेने की व्यवस्था अपने विशिष्ट आर्य-सैन्यके विशेषज्ञ एक मित्र-द्वारा करा ली थी, अपने निर्द्धारित समय पर निश्चित स्थान पर आ मिली। मंत्रिवर की आर्य-सैन्य-संगठन-योजना इतनी सफल होगी, इसका किसी को क्वचित-पूर्वाभास भी नहीं मिला था। जिस जनबल के लिये, सिन्ध के महाराजकुमार जयसिंह आर्य-शासकों के पास जा-जाकर बहुत कष्ट उठाने के बाद काश्मीर में सफल हुए थे, वही जनबल, जिसमें स्वेच्छा-सेवकों की संख्या अधिक थी, पचास सहस्र की संख्या में अपने शस्त्रास्त्र-सहित, मंत्रिवर की सेवा में अनायास उपस्थित हो गया। यद्यपि इन दलों को पूर्ण सैनिक शिक्षा नहीं मिली थी और न इनके पास उत्तम हथियार ही थे, पर उनके हृदय में वह उमंग, वह चाव, वह लगन और वह साहस था कि जिसके बल पर राष्ट्र उठा करते हैं।

निदान, जब मंत्रिवर की विशाल सेना उधाकार से एक योजन दक्षिण तक आ पहुँची तो उसमें, एक लक्ष स्वेच्छा-सैनिक आ मिले, जो अपने रक्त-तर्पण-द्वारा, पतनोन्मुख आर्य-राष्ट्र को पुनः अपना मस्तक गौरवपूर्वक ऊँचा कराने के लिये आतुर थे और स्वप्न में भी पाँव पीछे हटानेवाले

नहीं थे। वे इसी भावना में डूबे हुए, द्रुत वेग से उधाफार अरब-सैनिक-शिविर की ओर बढ़ रहे थे कि कब पूर्णचन्द्रोदय हो और कब हम शत्रुओं का उष्ण रक्त उसके प्रकाश में प्रवाहित करें।

गोधूलि-बेला आ पहुँची और उसके साथ ही चारों दिशाओं से आर्य सेनाएँ भी मंत्रिवर के पूर्वादेशानुसार अरब-शिविर से केवल पाव-पाव कोस के अन्तर पर पहुँच कर रुक गयीं। उधाफार से चारों दिशाओं को जानेवाली सड़कों में एक कन्नौज जानेवाली सड़क ही ऐसी थी जो चौराहे पर पड़ाव डाले पड़ी अरब-सेना के पड़ाव से बिल्कुल सीध में थी। अरब-सेना को यह आभास मिल गया कि पूर्व से आर्य-सेना आ रही है और बहुत निकट आ चुकी है। उसने समझ लिया कि कान्य-कुब्ज नरेश अब उनके आक्रमण की प्रतीक्षा न कर उनके सन्देश का क्रियात्मक उत्तर देने आ रहे हैं, इसलिये, उसके नाफ्ता-धारियों ने तुरन्त आगन्तुक कन्नौजी सेना पर आगे बढ़कर तीरों की बौछार करने का निश्चय इस विचार से कर लिया जिससे सेना के आगे बढ़ने की नौबत ही न आवे।

जिस समय, अरब-नाफ्ताधारियों के तीर सनसनाहट के साथ छूटे तो कन्नौजी सेना की अगली पंक्ति में स्थित धनुर्धारी दल ने भी पलक मारते ही उसके उत्तर में ऐसा

प्रबल प्रहार आरम्भ किया कि जिसकी आशंका अरब-सेना को स्वप्न में भी न थी। देखते ही देखते अरब-नाफताधारियों का दल धराशायी होने लगा। नाफताधारियों में जो धराशायी होने से बच गये वे इस अप्रत्याशित प्रबल बाण-प्रहार के भय से पीछे की ओर मुड़कर भागने लगे; पर कान्यकुब्ज-नरेश का धनुर्धारी दल कोई सामान्य नहीं था—वह संख्या और नैपुण्य दोनों ही दृष्टियों से अरब-नाफताधारियों की अपेक्षा बहुत अधिक शक्तिशाली और व्यूहात्मक युद्ध में निपुण था। उसने विभिन्न कोण-भेद प्रहारों से लगभग सारी टोली को वहीं समाप्त कर दिया।

अरब सेना को जब यह ज्ञात हुआ कि कन्नौजी सेना के पास तो ऐसा प्रबल धनुर्धारी दल है जिसने क्षण भर में ही उसके दो सौ से अधिक धनुर्धारियों को यमलोक भेज दिया है, तो उनके हाथ-पाँव फूल गये। उन्होंने समझा कि अब तो उन्हें अपने ही अस्त्र से पराजित होने की दुर्दशा का सामना करना पड़ेगा। शैबानी ने अपनी सेना को आदेश किया कि वह तुरन्त दक्षिण की सड़क पकड़ ले। शेष नाफ्ता-धारी और घुड़सवार सेना को उसने पीछे रख लिया और पैदल सेना तथा ऊँटों आदि सहित लाव-लश्कर को ब्राह्मणा-बाद की ओर रवाना कर दिया।

शरद् पूर्णिमा के पूर्ण चन्द्र का प्रकाश अब निखर चुका

था, इसलिये सिपहसालार शैबानी को आशा थी कि यदि पराजित होकर भागना ही पड़ा तो चाँदनी रात में रातों रात वह लाव-लश्कर सहित बहुत दूर निकल जायगा और आर्य-सेना सम्भवतः दूर तक उसका पीछा न करेगी। परन्तु उस बेचारे को क्या पता था कि थोड़ी ही दूर पर मंत्रिवर शशिकर एक लाख सैनिकों के साथ उसका स्वागत करने को तैयार है।

अरब-सेना का पदाति-भाग और ऊंटों का दल मंत्रिवर ने दूर ही से देख लिया और मध्य भारत के विख्यात धनुर्धारियों ने उन पर अपना हस्तकौशल दिखाना आरम्भ किया। थोड़ी-ही देर में ऊंटों की सारी लम्बी कतार न जाने कहाँ लुप्त-सी हो गयी। दूर से ऊँटों पर धनुर्धारियों का लक्ष्य ऐसा ठीक लगा कि सहस्रों लदे-लदाये ऊँट अपने आरोहियों सहित सड़क पर लोट गये।

इस दक्षिण दिशा के अप्रत्याशित बाण-प्रहार के कारण, आगे-आगे चलनेवाली पैदल अरब सेना तितर-बितर हो गयी। अपने सैन्याधिकारियों के लाख समझाने पर भी वह जमी न रह सकी। पदाति सैनिक सड़क से दायें-बायें मुड़ कर पार्श्ववर्ती वनों में छिपने लगे।

उधर कन्नौज की सेना अपने धनुर्धारियों के पीछे-पीछे द्रुत वेग से आगे बढ़ी। उसने भाँप लिया कि अब अरब

सेना के पाँव उखड़ रहे हैं, इसलिये वह उसको छिन्न-भिन्न हो जंगलों में छिप जाने का अवसर नहीं देना चाहती थी। कन्नौज की घुड़सवार राजपूत सेना बड़े तीव्र वेग से शत्रु के पलायनोन्मुख सैन्य-दल पर टूट पड़ी और अपने खड्ग और भालों से उन्हें यमालय भेजने लगी। अरब-सेनापति को जब यह पता लग गया कि अब भागना व्यर्थ है, क्योंकि दक्षिण दिशा में तो उनको आगे जानेवाली सेना पर प्रबल आक्रमण हो ही चुका है, अब पूर्व, उत्तर और पश्चिम दिशाओं से भी आर्य-सेनाओं ने उनकी सारी फौज को घेर कर कुचल डालने का कुचक्र रच लिया प्रतीत होता है। ऐसी दशा में, जम कर लड़ने में ही बहादुरी है। यदि यह न हो, तो आत्म-समर्पण कर देने से भी प्राण बच सकते हैं, क्योंकि आर्य सैनिक हथियार डाल देने पर दुश्मन को भी नहीं मारते।

पहले तो अरब-सिपहसालार ने खिली चाँदनी में अपनी घुड़सवार फौज को कन्नौजी अश्वारोही सैन्य-दल से लड़ाया और अरब-अश्वारोहियों ने राजपूतों से जमकर लोहा लिया, पर इसी बीच उत्तर से काश्मीरी और पश्चिम से सिन्धी अश्वारोहियों का दल भी उन पर दोनों पार्श्वों से टूट पड़ा, जिससे अरब अश्वारोहियों की पंक्ति भंग हो गयी। यह स्थिति आ जाने पर और सिपहसालार के अब तक आत्म-

समर्पण न करने पर बहुतेरे अरब-अश्वारोही अपने घोड़े खुले मैदान से भगा-भगा कर वन में प्रविष्ट होने लगे।

पर दक्षिण में उष्ट्रारोही और छिन्न-भिन्न होती हुई पैदल अरब सेना को लगभग समाप्त कर मंत्रिवर की सेना भी अब चौराहे के निकट आ पहुंची थी और उसके धनुर्धारियों ने बन की ओर भागते हुए अरब-अश्वारोहियों को अपना लक्ष्य बनाना आरम्भ कर दिया। उत्तर की ओर भागने का प्रयत्न करनेवाले अरब सैनिकों को काश्मीरी राजपूतों ने साग की तरह काटना आरम्भ कर दिया और पश्चिमाभिमुख होनेवालों का स्वागत करने के लिये उनसे खार खाई हुई सिन्धु सेना तैयार ही थी। मकराने से भारत की रत्न-स्वर्ण राशि लौटा लाने के पश्चात् इन सैनिकों में वह साहस आ गया था कि वे भारत में एक भी अरब जीवित नहीं देखना चाहते थे।

इस प्रकार जब आधी से अधिक अरब अश्वारोही फ़ौज काम आ गयी तो सिपहसालार शैबानी ने अपने साथियों की सलाह से हथियार डाल कर आत्म-समर्पण कर देने का निश्चय किया।

हथियार डाल कर श्वेत पताका दिखा देने पर कन्नौजी सेना ने तो अपना आक्रमण बन्द कर दिया, और काश्मीरी अश्वारोहियों ने भी अपने हाथ रोक लिये, किन्तु मन्त्रीवर

की दाक्षिणात्मक और सिन्धु की सेनाओं ने अब भी अपना आक्रमण चालू रखा।

कान्यकुब्जाधिपति महाराज हरचन्दराय अब युद्धस्थल के सन्निकट आ चुके थे। उन्होंने मन्त्रिवर शशिकर, महाराजकुमार जयसिंह तथा सिंध के राजा-सामन्तों के पास अपने सन्देश भेज कर अनुरोध किया कि अब आक्रमण बन्द करके आत्म-समर्पण करनेवालों को बन्दी बना लिया जाय।

तीनों ही ने कान्य कुब्जाधिपति के अनुरोध की रक्षा की। अरब-सैनिकों को सामूहिक रूप में बन्दी बना लेने के पश्चात् महाराज हरचन्दराय, महाराजकुमार जयसिंह, मंत्रिवर शशिकर तथा सिन्धु तथा दक्षिण एवं मध्य-भारत के समस्त राजा सामन्त एवं प्रमुख सैनिक उधाफार के चौराहे पर एकत्रित हुए। चन्द्रमा का प्रकाश पर्याप्त रूप में निखर आने पर भी ज्योति-शिखाएं जला ली गयी थीं। सभी श्रेष्ठ जन परस्पर आदर-अभिवादन-प्रदर्शन के उपरान्त मंडलाकार बैठ गये।

सबसे प्रथम मंत्रिवर शशिकर बोले। उन्होंने कान्य-कुब्जाधिपति को प्रमुख मानते हुए उनसे तथा समस्त राजा-सामन्तों एवं उच्च सैन्याधिकारियों से कहा :—

"महामान्य कान्य-कुब्जाधिपति, आर्य नरेशवृन्द एवं अधिकारीगण!

"कान्यकुब्जाधिपति श्रीमहान्महाराज श्री हरचन्द्ररायजी के आदेशानुसार शत्रु के आत्मसमर्पण कर देने पर हमने उनपर प्रहार करना बन्द कर दिया है; परन्तु अब प्रश्न यह है कि इस विशाल अरब-सेना के साथ हम क्या व्यवहार करें ? अरबों ने हमारे राजवंशियों के साथ जैसा बर्ताव किया है उसे देखते हुए एक भी अरब को जीवित छोड़ देने का अर्थ होगा हमारी भावी सन्तान के लिये पश्चात्ताप-पूर्ण और संकटमय जीवन। जहाँ तक सिन्धु-प्रदेश का सम्बन्ध है, स्वर्गीय महाराज दाहिरराय के आकस्मिक शिरच्छेद और दोनों महाराजकुमारियों का बलात् खलीफा के हरम में बगदाद पहुँचाया जाना, ऐसी घटनाएँ हैं जो हमारे हृदय में शूल की तरह चुभ रही हैं। हमें अपनी स्वर्ण-रत्न-राशि और विपुल सम्पत्ति लुट जाने का उतना दुःख नहीं है जितना कि इन दो बातों का। आज सारा-सिन्धु-प्रदेश अनाथ हो चुका है, महाराजकुमारियों के अपहरण से, समस्त भारत और आर्य जाति के मस्तक पर कलंक का टीका लग चुका है। मैंने इसी आशा से इतने दिन तक अरबों के समान जीवन व्यतीत किया कि किसी न किसी प्रकार एक दिन इस पवित्र भारत-भूमि को विदेशियों से मुक्त करा सकूँगा। वह मंगल-प्रभात आ गया है, जब इस कलंक से भारत मुक्त हो सकता है।"

मंत्रिवर के इस संक्षिप्त भाषण का समर्थन महाराज-कुमार जयसिंह ने किया और सिंधु और दक्षिण के अन्य राजा-सामन्तों ने भी इसका अनुमोदन किया। परन्तु कान्यकुब्ज के वयःप्राप्त शासक महाराज हरश्चन्द्रराय ने अन्त में कहा:—

"मंत्रिवर, राजपुरुषों और उच्च सैन्याधिकारियो।

"मैंने आप लोगों के भाषण ध्यानपूर्वक सुने हैं और उनमें सुझाये गये प्रस्ताव की ओर भी लक्ष्य किया है। यह सत्य है कि इन विधर्मियों ने हमारी बहुत बड़ी क्षति की है और उन्हें क्षमा नहीं किया जाना चाहिए। किन्तु मैं चाहता हूँ कि जिस बात की ओर आपका ध्यान आकृष्ट, किया गया है उसके दूसरे स्वरूप पर भी विचार कर लें। अरबों ने अपनी म्लेच्छता प्रदर्शित की है, इसलिये आर्यों को भी अपने आर्यत्व का परिचय देना चाहिये और इन बन्दियों को प्राणदण्ड न देकर इन्हें केवल कारागार-भोग का दण्ड दे देना चाहिये। इनसे हम अनेक ऐसे काम ले सकते हैं जिनसे सार्वजनिक हित हो—उदाहरणार्थ, आप जितने बन्दी हमारे कान्यकुब्ज राज्य को देंगे उनसे हम कुएँ तालाब खुदवाने, राजपथ बनवाने और अन्य प्रकार के जन-हित के काम लेंगे। इसी प्रकार की योजना आपलोग अपने-अपने राज्यों में कर सकते हैं। शस्त्रास्त्र डाल कर आत्म-समर्पण करने वाले—शस्त्रास्त्र शरण आनेवाले का वध करना आर्य-धर्म

नहीं है। इन्हें प्राण-दान न देकर हम अपने आर्यधर्म के गौरव और यश को लांछित नहीं करेंगे और सारे संसार में हमारा अपयश होगा।

मंत्रिवर ने अन्त में फिर कहा—"मैं श्रीमान कान्यकुब्ज नरेश के विचारों से सहमत नहीं हूँ। आर्यधर्म का गौरव और यश बढ़ने के नाम पर हमें ऐसी आत्मघातिनी नीति काम में नहीं लानी चाहिये, जिसके लिये हमारे बंशज शताब्दियों तक कष्ट भोगें और हमें यह कोसें कि हमारे पूर्वजों ने अरबों को निर्बीज न करके भारी भूल की जिसने हमें आज तक पछताना और दण्ड भोगना पड़ रहा है। फिर भी, श्रीमान कान्यकुब्जाधिपति हम सब में वयःप्राप्त और श्रेष्ठ हैं—हमारी इस विजय में उनका हाथ भी सबसे अधिक है, इसलिये, उनका सुझाव ठुकरा देना भी उचित नहीं प्रतीत होता। मैं इन बन्दियों के किसी भी अंश का बँटवारे के रूप में लेना और उनके द्वारा जन-हित के काम कराना सिन्धु के लिये वांछनीय नहीं समझता। अरबों को प्राण-दान दिये जाने के विरोध-स्वरूप हम उन्हें अपने कारागार में रखने से इन्कार करते हैं। हाँ श्रीमान कान्यकुब्ज-नरेश को उनको जीवित ही रखना है तो वे उन्हें अपने कारागार में रखें।"

मंत्रिवर के इस कथन का समर्थन कन्नौज के अतिरिक्त

और सभी प्रदेशों के राजा सामन्तों और उच्च सैनिक अधिकारियों न किया अन्ततः वन्दियों का भार कन्नौज पर ही छोड़ दिया गया।

सभी राजा-सामंतों और प्रमुख अधिकारियों ने मंत्रिवर और राजा हरचन्दराय का अभिवादन किया।

महाराजकुमार जयसिंह ने मंत्रिवर का चरण-स्पर्श कर कहा:—

"मन्त्रिवर, आप मंत्रिवर ही नहीं गुरुवर भी हैं। आपने भारत के धर्म और संस्कृति, धन और सम्पत्ति तथा इन सबसे बढ़कर उसकी खोई हुई स्वतन्त्रता को पुनः प्राप्त करा दिया और कम से कम इस समय तो उसे कलंक से मुक्त करा न दिया है।"

महाराज हरचन्दराय ने सभा विसर्जित करने के पूर्व कहा :—

"इसमें सन्देह नहीं कि मन्त्रिवर के बुद्धि-बल और कौशल से, आज आर्यजाति में वह संगठन हो गया है कि वह चारों दिशाओं से उमड़ कर आर्यावर्त्त की रक्षा के दृढ़ संकल्प में सफल हुई है। जिस आकस्मिक रूप में हमारे देश पर अरबों का पाद-प्रहार हुआ था उसे यदि मन्त्रिवर, जो वास्तव में गुरुवर हैं, समय रहते सँभाल न लेते, तो आज सारे देश पर अरबों का साम्राज्य छा जाता। मन्त्रिवर ने

अपने दृढ़ संकल्प, निरन्तर संघर्ष और अपूर्व मेधाशक्ति-द्वारा आर्य-संस्कृति और आर्य-समृद्धि की रक्षा प्राणपण से की है और इसके लिये उनका नाम यावच्चन्द्रदिवाकरौ अमर रहेगा। भगवान से प्रार्थना है कि वे ऐसे मन्त्रिवरों को युग-युग में भेजकर इस पवित्र देश को निष्कलंक बनाते रहें, जिससे आर्य-संस्कृति की अमर ज्योति सदा जलती रहे।"

उपसंहार

सिन्धु-प्रदेश से अरब-अधिकारियों का उच्छेद भले ही हो गया, पर सहिष्णु हिन्दू जनता और शान्तिप्रिय बौद्धाचार्यों ने, अपने स्थानों में अरब-प्रवासियों को शरण दे दी। यह सत्य है कि अब अधिकारच्युत और प्रभाव-विहीन अरब अपने मत का प्रचार नहीं कर पाते थे, पर मुहम्मद बिन-क़ासिम ने जो मस्जिदें, खानकाहें और इस्लाम की शिक्षा दीक्षा के साधन बनवा दिये थे उन्हें न भारतीय जनता ने छेड़ा और न शासन ने। संख्या और विस्तार की दृष्टि से इस्लाम का प्रसार कम नहीं हुआ था, क्योंकि, मारे गये थे केवल सैनिक, और शासनाधिकार-विहीन हुए थे केवल-मुहम्मद-बिन-क़ासिम के रखे हुए विश्वासपात्र उच्चाधिकारी अरब इस्लाम स्वीकार कर चुकी जनता और अरब व्यापारियों की उससे कोई क्षति नहीं हुई। किन्तु उस समय आर्य अपने उन बिछुड़े हुए भाइयों को गले लगाने की भावना से

कोरे थे अतः उनकी वृद्धि पर धर्मावलम्बी के रूप में-ही होने लगी।

जो सैनिक उधाफार के युद्ध में कैद किये गये थे उनके साथ अपनी परम्परा के अनुसार कान्यकुब्जाधिपति ने कोई विशेष कठोर व्यवहार नहीं किया, क्योंकि उनके अथवा किसी भी मुसलमान-अधिकारी के द्वारा कन्नौज की न तो कोई क्षति हुई थी और न महाराज हरिचन्द्रराय की दृष्टि में आगे हा होने की संम्भावना थी। ऐसी दशा में सहस्रों की संख्या में इन सैनिक बन्दियों को कुछ वर्षों तक तालाब और सड़कें बनाने के काम पर लगाने के पश्चात अधिक समय तक केवल बन्दियों के रूप में रखना उन्होंने अवांछनीय समझा। इसके अतिरिक्त इन सैनिक बन्दियों का व्यवहार उनकी देख-रेख करनेवालों को इतना प्रिय प्रतीत हुआ कि उन्होंने महाराज से उन्हें छोड़ कर अलग बस्ती में बसा देने और जनोपयोगी कुछ काम-काज करने की स्वतन्त्रता दे देने के लिये अनुरोध किया। ये सैनिक कैदी ऐसे आज्ञाकारी मिष्टभाषी और विनम्र बन गये थे कि उनके प्रधान शैबानी ने अपने इस गुण में उस युग के लोगों में नाम पा लिया।

स्वतंत्रता प्राप्त करने के पश्चात् उन अरबों ने कन्नौज राज्य के अनेक भागों में अपनी रुचि के अनुसार विभिन्न कार-बार कर लिये। न तो प्रजा ने ही उनके बसने में कोई

आपत्ति की और में महाराज ने ही। उन्हें अपने धर्म का पालन करते हुए काम-काज करने की स्वाधीनता हो गई। उनके प्रधान शैबानी ने तो महाराज के प्रति ऐसी भक्ति प्रदर्शित की कि उसे कुछ समय बाद गुप्तचर विभाग का प्रमुख नियुक्त कर दिया गया। कहने की आवश्यकता नहीं, कि यह भारत में पहला उदाहरण था जब कि किसी आर्य शासक ने किसी मुसलमान को अपने किसी विभाग में सेवक रखा हो और उसे ऐसा महत्त्वपूर्ण पद प्रदान किया हो। इसका परिणाम भारत पर क्या हुआ, यह तो इतिहास ही बताता है। कहा जाता है कि आगे चल कर शैबानी के वंशधरों में हो एक ने सम्राट् पृथ्वीराज के विरुद्ध कान्यकुब्जाधिपति जयचन्द के ईर्ष्या-भाव का उपयोग करते हुए, मुहम्मद गोरी को चढ़ाई का आमंत्रण और कन्नौज की सहायता का आश्वासन दिया था, और इस प्रकार उसने हिन्दू-साम्राज्य का पतन करा कर भारत के इतिहास में जयचन्द के नाम को ऐसा कलंक लगवा दिया जो अमिट बना रहेगा और जिसका परिणाम हमें इस सभ्यतापूर्ण युगमें भी भोगना पड़ रहा है।

मुलतान तथा सिन्धु के सभी प्रमुख स्थानों में मस्जिदों, खानकाहों और इस्लामी शिक्षा-दीक्षा के केन्द्रों को न आर्य-शासकों ने ही छेड़ा और न प्रजाजन ने ही। स्वतंत्र नागरिक के समान प्रत्येक अरब अपने विश्वास के अनुसार धर्म का

पालन करता और स्वच्छंद विचरता रहा। विविध व्यापार, कला-कौशल, विशेषत: हस्त-कौशल में उन्होंने विशेष अभिरुचि दिखाई और उसमें विशिष्ट निपुणता प्राप्त कर, आर्य जनता के जीवनोपयोगी साधन जुटाने के कारण से उसके एक अंग ही बन गये; पर धार्मिक और सांस्कृतिक दृष्टि से उन्होंने सदा अपने को विलग रखा।

मंत्रिवर ने उधाफार की प्रथम आय-विजय के पश्चात् सिन्धु लौट कर सबसे पहला काम यह किया कि मार्त्तण्ड-मन्दिर का लुटा हुआ सारा सामान, जो क्षत्रिय राजाओं, सामन्तों और योद्धाओं ने मकराना में अरबों के चंगुल से छुड़ा लिया था और सुरक्षित रूप में एक स्थान पर रख दिया था, पुन: मन्दिर को न केवल वापस कर दिया, प्रत्युत् फिर से चतुर मूर्त्तिकार शिल्पी लगा कर प्रतिमा को पूर्ववत् स्थापित कर उनका पुनर्प्राणप्रतिष्ठा का महोत्सव किया। उसके पश्चात् ब्राह्मणाबाद पहुँच कर, उन्होंने महाराजकुमार का विधिवत् राज्याभिषेक किया। मुलतान के राज्यकोष से लुटे और फिर वीर क्षत्रियों द्वारा अरबों के हाथों से लौटा लाये गये धन का आधा भाग मंत्रिवर ने उन सभी शूर-योद्धाओं में वितरित कर दिया जिनके बाहुबल से उसका उद्धार हुआ था। इस सम्पत्ति का शेष अंश आर्य-जाति के आन्तरिक संगठन के उद्देश्य में लगाने के लिये मंत्रिवर ने

सुरक्षित कर दिया।

× × ×

महामाया के सम्बन्ध में यह बात प्रसिद्ध हो गयी कि वे न जाने किस प्रकार बगदाद से मुल्तान लौट आयीं। कुछ लोगों का यह भी कहना है कि महामाया ने तो महाराज-कुमारियों को दीवार में चुन दिये जाने के साथ ही, योग-बल से अपने शरीर का परित्याग बगदाद में कर दिया था, और वहाँ के कुछ उदारचेता नागरिकों ने उस आदर्श-चरित सेविका के नाम से वहाँ एक छतरी बनवा दी थी, जो बगदाद नगर के बाहर "जोगमाया" के नाम से अब भी अस्तित्व में है। इतिहास इस सम्बंध में मौन है, पर मुलतान में यह किंव-दन्ती है, कि मार्त्तण्ड मन्दिर की पुनर्प्राण-प्रतिष्ठा हो जाने के पश्चात, वहां नित्य सायंकाल गोधूल वेला में एक प्रौढ़ स्त्री श्वेत वस्त्र धारण किये और जलपूर्ण-कलश लिये मंदिर के पक्के जलाशय की सीढ़ियों पर चढ़ती हुई मार्त्तण्ड-मंदिर के मूर्त्ति-कक्ष की ओर जाती दिखायी देती है। कुछ लोगों का कहना है कि बगदाद से लौटकर बहुत दिनों तक महामाया ने इसी प्रकार जीवन व्यतीत किया था और उनका नित्य सूर्य भगवान को जल चढ़ाने का क्रम उनके जीवन भर चलता रहा है। उन्होंने राज-परिवार और प्रजाजन से विलग रहते हुए अपनी एकान्त-साधना में ही अंतिमसाँस छोड़ी थी

और इस प्रकार, राजवंश आर्य-जगत और स्वधर्म के प्रति अपनी निष्ठा प्रदर्शित करते हुए उस नश्वर शरीर का परित्याग किया था जिसका सर्वश्रेष्ठ उपयोग स्वजनों एवं सुजनों की सेवा है।

कुछ लोग यह भी कहते हैं कि दीर्घ-काल तक नित्य मन्दिर के सोपान पर जल-घट लेकर चढ़ने वाली महिला महामाया की छाया थी, जो अब भी मुलतान नगर के निवासियों को कभी-कभी दिखायी दे जाती है।